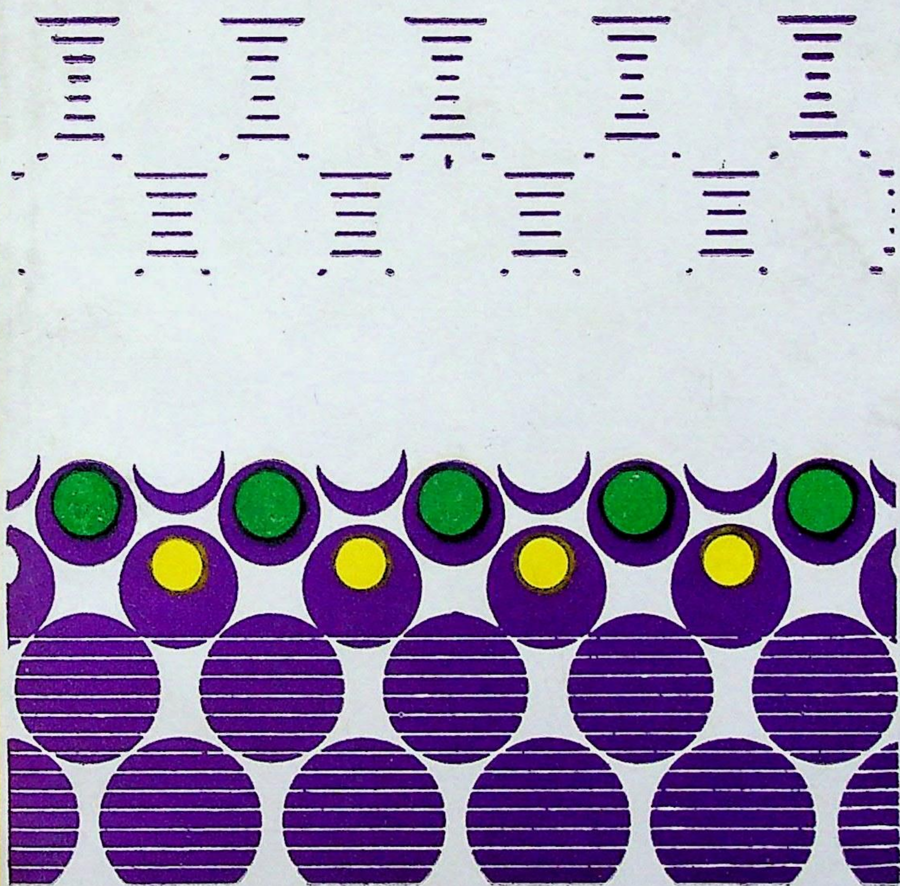
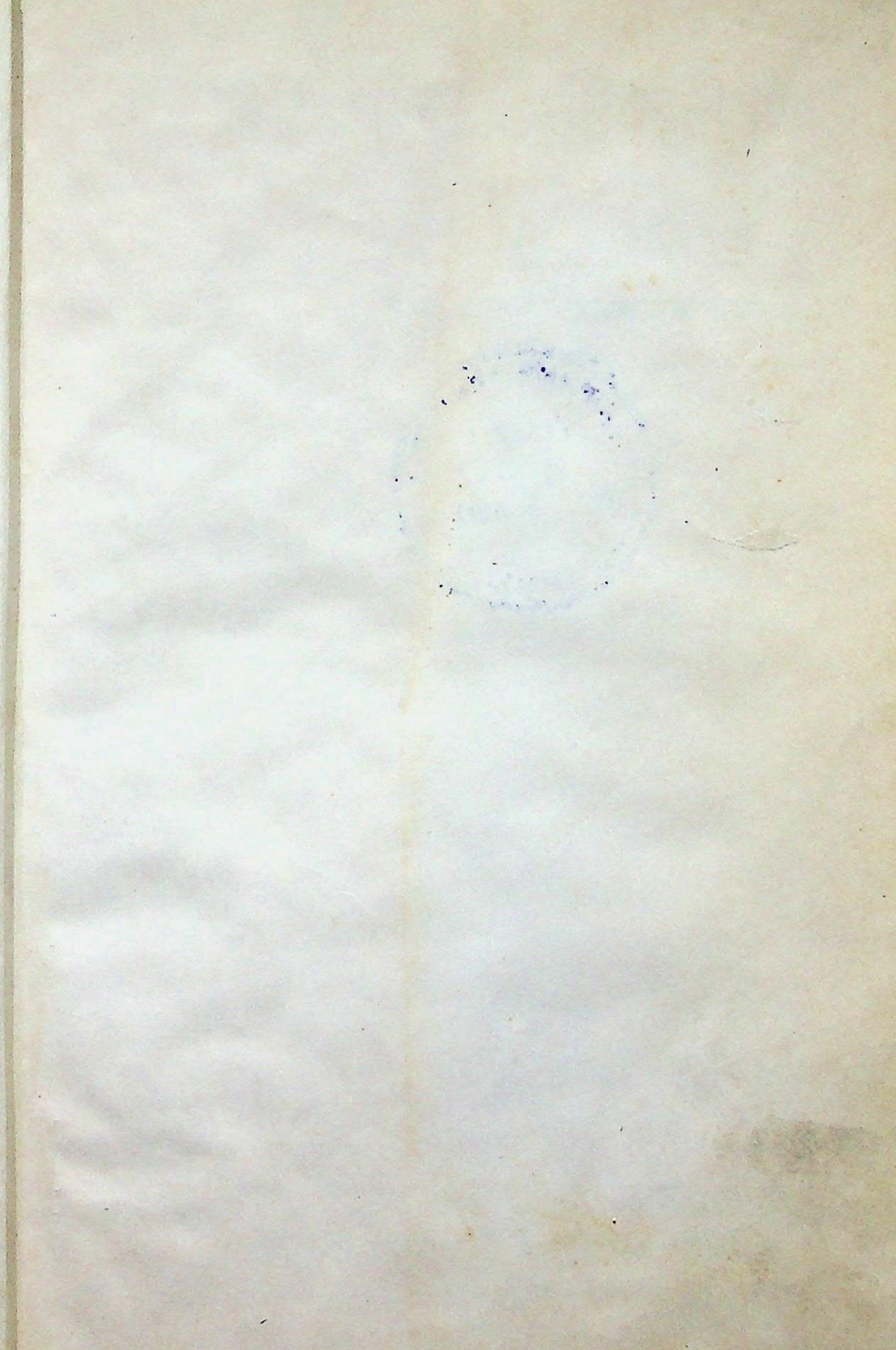
हमारा साहित्य



जे० एंड कें०
अकादमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़, जम्मू





हमारा साहित्य-1986

जम्मू प्रांत का सांस्कृतिक सर्वेक्षण

संपादक

ओम गोस्वामी



जे० एंड के०

अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज,

जम्मू ।

HAMARA SAHITYA—1986

(Cultural Survey of Towns of Jammu Province)



मुल्ल : 23/- रुपए   Price : Rs. 23/-

प्रकाशक—सैक्रेटरी, जे० एंड के० अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज, जम्मू।

प्रथम संस्करण—मार्च 1989

मुद्रण—रोहिणी प्रिंटर्ज़, कोट किशनचन्द, जालन्धर—144001

प्रकाशकीय

हमारा सदा यह प्रयास रहा है कि शीराज़ा हिन्दी तथा हमारा साहित्य जैसे अकादमी के नियतकालिक प्रकाशनों द्वारा रियासत जम्मू व कश्मीर में हिन्दी विषयक होने वाली रचनात्मक गतिविधियों को प्रतिबिंबित करें तथा हिन्दी में रचे जा रहे स्तरीय साहित्य को प्रकाशित करें। इसके अतिरिक्त इन नियत कालिक प्रकाशनों द्वारा रियासती भाषाओं की साहित्यिक गतिविधियों को भी समुचित रूप से इनमें प्रकाशित किया जाता रहा है। वस्तुतः यह दोनों प्रकाशन राज्य में साहित्यिक जागरण तथा सांस्कृतिक नव-चेतना के वाहक बने हुए हैं।

जम्मू-कश्मीर राज्य की बहुरंगी संस्कृति के भिन्न-भिन्न पहलुओं पर इन दोनों प्रकाशनों में सामग्री दी जाती रही है। हमारे इन प्रयासों को न केवल रियासत में प्रत्युत् देश भर में सराहा गया है।

हमारा साहित्य के इस अंक में हम ''जम्मू प्रांत का सांस्कृतिक सर्वेक्षण'' प्रस्तुत कर रहे हैं। हमने लगभग तमाम मुख्य नगरों और कसबों पर लेख निर्धारित किए थे, परन्तु वे समय पर पहुँच न पाए। जो लेख बाद में हमारे पास पहुँचेंगे—उन्हें अगले अंकों में प्रकाशित करने का प्रयास करेंगे।

संस्कृति एक समुद्र की भांति होती है—अथाह और विस्तृत। इस छोटे से संकलन में हम जम्मू प्रांत की संस्कृति को समूचे रूप से प्रस्तुत करने का दावा नहीं करते, किन्तु यदि इस दिशा में हमारे शोधकर्ता अपने प्रयास जारी रख पाएं तो निश्चय ही संस्कृति समुद्र से नवनीत का प्राकट्य होगा।

'हमारा साहित्य' के इस अंक पर आपके विचारों की प्रतीक्षा रहेगी।



अनुक्रम

बिलावर : एक सांस्कृतिक सर्वेक्षण

□ डॉ० सत्यपाल श्रीवत्स

जम्मू-कश्मीर राज्य के जम्मू प्रान्त के मानचित्र में उज्झ घाटी अपना विशिष्ट स्थान रखती है। इसकी मनमोहक जलवायु, प्राकृतिक सौन्दर्य, समृद्ध लोक साहित्य, समन्वयात्मक धार्मिक विश्वास, जनजीवन में सादापन तथा सरलता तथा अनाज की सन्तोषजनक उपज आदि ऐसी विशेषताएं हैं जिनके कारण यह घाटी इस राज्य के सर्वविध विकास में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने का दम भरती है।

इस घाटी में अपनी त्रिकोणात्मक स्थिति में विद्यमान भड्डू, बिलावर तथा बसोहली इन तीनों का ऊपर वर्णित विशेषताओं के साथ-साथ राजनैतिक तथा सांस्कृतिक दृष्टियों से इस घाटी में और भी अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है।

इन तीनों में भी भड्डू और बसोहली के मध्य केन्द्रबिन्दु के समान या माला में मेरुदण्ड के समान विद्यमान बिलावर प्राचीन तथा वर्तमान परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में अपना और भी उज्जवल तथा महत्वपूर्ण स्थान बनाए हुए है।

उ'ज्ज नदी की दो सहायक नदियों के मध्यवर्ती भाग (नाज़ नदी के पूर्वी तट पर तथा भीनी नदी से ३ किलोमीटर पश्चिम की ओर हिमालय-शृंखला की एक छोटी-सी पहाड़ी की गोद में बसा यह नगर आज पहले की अपेक्षा कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण नगर बन चुका है, जिनका दिग्दर्शन मात्र कराते हुए इस नगर का यहां सांस्कृतिक सर्वेक्षण प्रस्तुत करना मात्र ही इस लेख का मुख्य विषय है।

संस्कृत के प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि अपनी प्रसिद्ध रचना अष्टाध्यायी में एक सूत्र-"भिद्योदध्यौनदे (३-१-११५) में उज्ज नदी के साथ जिस 'भिद्य' नदी का उल्लेख करते हैं उसकी पहचान के बारे में विद्वानों के दो मत हैं :— (१) 'भिद्य' उज्ज की सहायक नदी 'बेई' (घग्वाल नगर के पास बहने वाली)

होनी चाहिए और दूसरे मत के अनुसार 'भिद्य' बिलावर से ३ किलोमीटर पूर्व में बहने वाली उज्ज की एक अन्य सहायक नदी 'भीणी' नदी होनी चाहिए। यदि हम दूसरे मत का अनुसरण करते हुए 'भिद्य' नदी को आज की उक्त 'भीणी' ही मान लें तो बिलावर के प्राचीन इतिहास को खोजने के लिए कुछ सूत्र हाथ में अवश्य लग सकते हैं। फिर तो कालिदास के रघुवंश का एक श्लोक (११-८) भी हमारी सहायता के लिए उपयुक्त तथा कारगर सिद्ध हो जाता है। जो यह प्रमाणित करता है कि उस महान् कवि ने भी इस सुन्दर घाटी का भ्रमण अवश्य किया होगा।

पाणिनि के बाद तथा कालिदास के लगभग समकालीन महाभाष्यकार पातंजलि (१५० ई० पू०) के अनुसार उ'ज्ज तथा भीणी नदियों के मध्यवर्ती भूभाग में धान की उत्तम खेती थी। आज भी यह भू-खण्ड धान की खेती के लिए अत्युत्तम माना जाता है। बिलावर से लगभग ४ किलोमीटर पश्चिम तथा उ'ज्ज नदी से लगभग तीन किलोमीटर पूर्व में 'नीहारू' नामक ५-६ वर्ग मील में फैले भू-खण्ड में तथा बिलावर के अत्यन्त निकट द्योल नामक स्थान में आज भी धान की उत्तम किस्म 'बासमती' की उपज होती है। बासमती के अतिरिक्त यहां दूसरे किस्म के धान की खेती की ही नहीं जाती।

नीहारू के आस-पास के भूभाग में दूसरे प्रकार के धान उत्पन्न किये जाते हैं।

यहां यह उल्लेखनीय है कि दुर्भाग्य से 'उज्ज माहात्म्य' नामक पुस्तक के आज उपलब्ध न होने से इस प्रदेश के इतिहास के कई रहस्यों की परतें धुंधलके में ही छुपी पड़ी हैं।

कश्मीर के संस्कृत साहित्य की दो प्रसिद्ध रचनाएं 'नीलमत पुराण' (७ वीं शताब्दी) तथा कल्हण कृत राजतरङ्गिणी (११ वीं शताब्दी) बिलावर का वेला-पुर एवं बल्लपुर नाम से उल्लेख करती हैं। इसी प्रकार विष्णु धर्मोत्तर पुराण भी बिलावर के इन्हीं प्राचीन नामों का संकेत देता है।

प्रसिद्ध विद्वान वाचस्पति गौरेला अपने एक लेख 'भारतीय चित्रकला में बसोहली शैली' में लिखते हैं कि आठवीं सदी ईस्वी में बसोहली राज्य की राजधानी बिलावर ही थी।[1]

(१) बिलावर का संक्षिप्त राजनैतिक इतिहास :—

स्व० नरसिंहदास नरगिस की पुस्तक 'तारीख डोगरा देस' के अनुसार ईसा की पांचवीं-षटी शताब्दी में तोमर राजपूत वंश का राजा भोगपाल अलमोड़ा (उत्तर-प्रदेश) से चलकर हरिद्वार, ज्वालामुखी तथा नूरपुर (कांगड़ा)

---

१. भारतीय चित्रकला शैली में बसोहली शैली,
योजना (मासिक) कश्मीर विशेषाङ्क, अगस्त-सितंबर, १९६२.
(सूचना विभाग जम्मू-कश्मीर)—पृ० ४९.

से होता हुआ जब बिलावर के स्थान पर पहुँचा तो उसे यह स्थान अत्यन्त सुंदर तथा शान्त प्रतीत हुआ। उस समय यहां पर केवल बिल्व या अधिक संख्यक बिल्व के वृक्षों का ही घना वन था जिसके मध्य में एक अद्भुत वास्तुकला कृति-वाला शिव मन्दिर भी था। इसके अतिरिक्त उसने यहां इधर-उधर गद्दियों के अस्थायी निवास तथा उनकी घूमती तथा झाड़ियों के पत्ते खाती भेड़ें भी देखीं। राजा को यहां बैठकर परम आत्मिक शान्ति तथा मानसिक प्रसन्नता की अनुभूति भी हुई। इस प्रकार इस स्थान के प्राकृतिक सौन्दर्य, आध्यात्मिक तथा धार्मिक वातावरण का राजा के मन और बुद्धि पर गम्भीर प्रभाव पड़ा। अतः उसने यहीं पर अपना स्थायी निवास बनाने का निश्चय कर लिया। इसके अनुसार उसने अपने बुद्धि कौशल से आस-पास के प्रदेशों तथा गांवों में बसने वाले गद्दियों तथा अन्य जाति के लोगों को यहां लाकर बसाया एवं यहां के बिल्व वन के अनुरूप उस नवनिर्मित नगर का बिल्वपुर नाम रक्खा जो बाद में कालक्रम से होते-होते (वेलापुर>बल्लापुर>बल्लपुर>) बिलावर बन गया जैसा कि आज प्रचलित है।

उसी बिल्व वन के अनुरूप उस मन्दिर में स्थित भगवान् शिव को भी बिल्वकेश्वर कहा जाने लगा जिन्हें आजकल बिल्लकेसर या बिल्लकेश्वर कहते हैं।

राजा भोगपाल ने इस नगर का निर्माण करके तथा इसे अपनी राजधानी घोषित करके बिलावर की सीमाएं विस्तृत कीं तथा इसे एक शक्तिशाली तथा स्वतन्त्र राज्य बना दिया।

भोगपाल के बाद बिलावर राज्य के सिंहासन पर क्रमशः नागपाल, सम्मलपाल तथा भोजपाल आरूढ़ हुए। इनमें केवल भोजपाल ही इतना प्रसिद्ध तथा शक्तिशाली हुआ कि बिलावर राज्य की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैल गई तथा राज्य में हर प्रकार की समृद्धि तथा खुशहाली का दौर आ गया। इसी के राज्य-काल में भड्डू राज्य भी बिलावर राज्य में सम्मिलित हो गया।

भोजपाल के दो पुत्र हुए सत्याधक तथा राधक। सत्याधक को बिलावर तथा राधक को भद्रवाह का राज्य सौंपा गया। इसके तुरन्त बाद राजा भोजपाल तीर्थ करने के लिए चल दिया था।

सत्याधक के बाद इस देश में क्रमशः राजा लक्ष्मण, शक्यपाल तथा मानशक्य ये तीन राजा हुए। क्योंकि मानशक्य के छोटे भाई सोमपाल को सुमरता प्रदेश का (उज्ज नदी के पश्चिमी भाग में) राज्य मिला। सोमपाल के वंशज बाद में सूंबड़िये कहलाए। सुमरता राज्य की राजधानी थड़ा-कलवाल नामक स्थान में थी।

उधर राजा मानशक्य ने बिलावर से लगभग १२ किलोमीटर की दूरी पर महानपुर नामक एक छोटा-सा नगर बसाया और अपनी राजधानी बिलावर

से बसोहली स्थानान्तरित करा दी। राजा मानशक्य ने ऐसा क्यों किया ? इस विषय में इतिहासकार मौन हैं।

इसी मानशक्य के सातवें वंशज थोक पाल के बहकावे में आकर लाहौर के एक मुसलमान राजा ने १०४३ ई० में उसके बड़े भाई तुंगपाल, जो उस समय बिलावर में ही था पर आक्रमण कर दिया और उनका घमासान युद्ध हुआ और तुंग पाल पराजित हो गया। आक्रान्ताओं ने बिलावर के शिवमन्दिर को भी बड़ी हानि पहुँचाई। इसकी कई मूर्तियां आदि तोड़ डालीं।

तुंग पाल के बाद बसोहली-बिलावर राज्य के क्रमशः चौदह राजा हुए। इस वंशानुक्रम का एक दौलत पाल गर्मियों में बनी नामक सुरम्य पहाड़ी प्रदेश में या बिलावर में रहता था। और सर्दियों में फिर बसोहली आ जाया करता था। दौलत पाल का पौत्र किशन पाल जब सिंहासनारूढ़ हुआ तो उस समय दिल्ली के सिंहासन पर मुगल सम्राट जहांगीर विराजमान थे।

किशन पाल का एक ही बेटा, जिसका जन्म १५७३ ई० में हुआ था। इसका नाम भूपत पाल था। यह अत्यन्त शक्तिशाली तथा योग्य प्रशासक था। इसने भड्डू, भद्रवाह, किश्तबाड़ और चंबा को बसोह्ली राज्य में मिला लिया था। इसी ने सन् १६३० ई० में रावी तट पर एक अत्यन्त भव्य तथा सुन्दर महल का निर्माण करवाया था। एक षड्यन्त्र में १६४२ ई० में भूपत पाल का क़तल हो जाने के कारण उसके पुत्र संग्राम पाल को १३ वर्ष की अत्यल्पायु में ही सिंहासन पर बिठा दिया गया था।

संग्राम पाल अत्यन्त सुन्दर तथा विद्या प्रेमी राजा था। इसकी सभा में विभिन्न विषयों के मर्मज्ञ नौ विद्वान थे जो नौ-रत्न कहलाते थे।

संग्राम पाल के राज्य काल में ही बसोहली चित्रकला का विकास हुआ था जिसकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैल गई थी।

संग्राम पाल के उपरान्त भूपेन्द्रपाल तक इस वंश में क्रमशः नौ राजा हुए। इन सभी के राज्य काल में बसोहली-बिलावर राज्य में सुख-समृद्धि तथा शान्ति बनी रही। इन राजाओं की राजधानियां बिलावर तथा बसोहली दोनों बनी रहीं। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि भूपेन्द्र पाल के राज्यकाल में ही डोगरी भाषा को राज्य-भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त हुई।

भूपेन्द्र पाल की मृत्यु के बाद इस वंश का अन्तिम राजा कल्याण पाल १३ वर्ष की अवस्था में राज्य सिंहासन पर बैठा जिसके राज्य काल में षड्यन्त्रों का दौर आरम्भ हो गया और इसी के परिणामस्वरूप यह राजा घुटन तथा तनाव की स्थिति में १८५८ ई० में स्वर्ग सिधार गया। इस प्रकार पाल वंश के इस अन्तिम राजा के अल्पायु में ही काल-कवलित हो जाने से बिलावर-बसोहली राज्य की सार्व-भौम सत्ता भी समाप्त हो गई। यह राज्य अनौपचारिक रूप से १८४६ ई० में गुलाबसिंह द्वारा शासित जम्मू राज्य में विलीन हो चुका था।

(क) बिल्वकेश्वर महादेव का मन्दिर —

इस महादेव के प्राचीन मन्दिर दी दुर्लभ कलाकृति के कारण इस मन्दिर की ख्याति प्राचीन काल से ही दूर-दूर तक फैली हुई है। इसके अतिरिक्त श्रद्धालुओं को यहां मनौति मानने पर यथोचित लाभ होने के कारण भी इसकी बड़ी महिमा है।

इस मन्दिर के निर्माण काल तथा निर्माता के बारे में सही जानकारी अभी तक इतिहास के गर्भ में ही छुपी होने के कारण रहस्य बनी हुई है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि उन्नत वर्तमान तकनीकी तथा विज्ञान की दुनिया को चुनौती देने वाली इस मन्दिर की वास्तुकला ने अभी तक भी पुरातत्व वेत्ताओं को इसकी प्राचीनता तथा अद्भुत निर्माण कला के रहस्य की गुत्थी सुलझाने के लिए प्रेरित नहीं किया है। परन्तु यह तो निश्चित है कि एक न एक दिन पुरातत्त्व-वेत्ताओं तथा इतिहासकारों को इसकी खबर-सुरत लेने के लिए विवश होना ही पड़ेगा।

अतः किसी प्रामाणिक तथा तथ्यपूर्ण जानकारी के अभाव में हमें केवल तथाकथित किंवदंतियों का आश्रय लेकर ही इस अद्भुत मन्दिर के बारे में जानकारी प्राप्त करके सन्तोष करना पड़ता है। इसके बारे में अब तक प्राप्त दो दन्त कथाओं का विवरण इस प्रकार है —

(क) महाभारत काल में जब पाण्डव अपने वनबास की अवधि काटते हुए घूमते-घूमते विलावर के स्थान पर आ पहुँचे तो यहां उन्होंने एक विशाल तथा घना बिल्व वृक्षों का वन देखा। इस स्थान के प्राकृतिक सौन्दर्य तथा शान्त वातावरण ने पाण्डवों का मन मोह लिया। इतना ही नहीं उन्हें यहां कुछ आध्यात्मिक प्रेरणा भी मिली। अतः उन्होंने कुछ समय तक यहीं पर रहने का निश्चय कर लिया। यहां रहते हुए उन्हें यहां भगवान् शिव का अद्भुत मन्दिर निर्मित करने की प्रेरणा भी हुई। दूसरे शब्दों में यहां का सम्पूर्ण बिल्व वन उन्हें शिवमय ही प्रतीत होने लगा। परिणाम स्वरूप उन्होंने शिव मन्दिर के निर्माण का कार्य आरम्भ कर दिया और कुछ समय के भीतर ही एक विचित्र कलाकृति वाला शिव मन्दिर बन कर तैयार हो गया।

(ख) अत्यन्त प्राचीन काल में इस मन्दिर का निर्माण कार्य देवताओं ने आरम्भ किया था और क्योंकि यह मन्दिर बड़े रहस्यमय वातावरण में बनाया जाना था अतः इसका निर्माण-कार्य रात के समय आरम्भ किया गया, परन्तु रात की अवधि तो बड़ी थोड़ी होती है इसलिए इस अल्पकाल में इसके बन कर सम्पन्न न हो सकने की आशंका से देवताओं ने रात की अवधि बढ़ा कर उसे छः महीनों जितना लम्बा कर दिया। उधर से मन्दिर का निर्माण कार्य आरम्भ हुआ और उसी समय समीपवर्ती गांव के किसी तैली ने अपने कोल्हू में बैल जोत

कर तैल निकालने का काम आरम्भ कर दिया, परन्तु जब वह तैली छः महीनों जितना काम सम्पन्न कर चुका अर्थात् छः महीनों में पेली जाने वाली सरसों की घानियों का तैल निकाल चुका तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वह झट कहने लगा, "क्या बात है आज रात क्यों नहीं बीत रही है तथा प्रातः काल क्यों नहीं हो रहा है ? मैं और मेरा बैल दोनों अत्यन्त थक चुके हैं। यह क्या आश्चर्य है ? प्राकृतिक प्रकोप है या देव इच्छा ? अब तो मेरे पास पेलने के लिए और सरसों भी शेष नहीं रही है। अब मैं क्या करूं इत्यादि। बस फिर क्या था ! उसके इतना कहते ही सूर्य देव की सुनहरी किरणें बाहर झांकने लग पड़ीं।

जब प्रातः काल हुआ तो सभी ने यह समाचार सुना कि बिलावर में रात ही रात में एक सुन्दर शिव मन्दिर निर्मित हो गया है। इस चमत्कारपूर्ण घटना से सभी आश्चर्य चकित हो गए तथा मन्दिर की अद्‌भुत वास्तुकला को देखने के लिए दूर-दूर से लोग आने लगे। तभी से लेकर इस मन्दिर में विराजमान शिव भगवान् की कृपा से भक्तजन निरन्तर लाभान्वित होते आ रहे हैं। संक्रान्ति, अमावस्या आदि पर्व दिनों के अतिरिक्त शिवरात्रि, वैशाखी, मकर संक्रान्ति तथा चैत्र-चौदस के त्योहारों पर यहां हजारों यात्री आकर भगवान् शिव पर जलधारा करके आत्म शान्ति भी प्राप्त करते हैं तथा अपनी मनौतियां पूरी हो जाने पर मनवांछित फल भी प्राप्त करते हैं। लोगों का भगवान् बिल्वकेश्वर के प्रति इतना अटूट विश्वास है कि वे इनके आगे जो भी अच्छी मांग श्रद्धा भावना से करते हैं वह पूरी हो जाती है।

भगवान् की कृपा से कई निर्धन ब्राह्मणों, झीवरों तथा योगियों की जीविका चलती है, जो दूरवर्ती लोगों से दो-दो या पांच-पांच या दस-दस रुपये प्रतिमास लेकर उनके नाम की नित्य जलधारा करते रहते हैं और महीना समाप्त होने पर सभी से रुपया इकट्ठा कर लेते या सम्बन्धित यजमान स्वयं अपनी-अपनी दक्षिणा उन्हें पहुंचा देते हैं।

इस मन्दिर की लम्बाई लगभग सत्तर फुट है। इसका गर्भगृह चौकोण है और इसके छत्त के मध्यवर्ती भाग में कमल का खिला हुआ फूल बना हुआ है। मन्दिर के बाहरी भाग में सभी जगह नक्काशी का सुन्दर कार्य किया हुआ है, जिसमें वेल-बूटे, मंगल घट, ब्रह्मा, विष्णु गणेश, दुर्गा आदि अनेक देवी-देवताओं की मूर्तियां बनी हुई हैं। इसके भीतर मध्य में पंचमुखी शिव लिङ्ग स्थापित है तथा सामने शिव-पार्वती की मूर्तियां विराजमान हैं। प्रसिद्ध पुरातत्त्व-वेत्ता पं० केदारनाथ शास्त्री इस मन्दिर को इण्डो-आर्यन शैली का शिखर मन्दिर मानते हैं। उनका विचार है कि इस मन्दिर की बाहरी ऊबड़-खाबड़ वाली आकृति उसी शैली का अंग है।[1]

---

१. 'डुग्गर देश की वास्तुकला तथा मूर्तिकला'
डोगरी रिसर्च इन्स्टीच्युट जम्मू 'निबन्धावली' १९६५, पृष्ठ ८३

सन् १०४३ ई० में जब राजा तुङ्गपाल के समय में जब बसोह्ली तथा बिलावर परिवारों में आपसी झगड़े आरम्भ हो गए तो लाहौर के तत्कालीन राजा ने एक पक्ष की सहायता के लिए जो सेना की कुमुक भेजी थी उसने इस मन्दिर की कला-कृतियों को भारी नुक्सान पहुंचाया था। उस सेना के नृशंस व्यवहार के चिन्ह आज भी इस मन्दिर में यत्र-तत्र मिलते हैं।

इस मन्दिर के बारे में यह भी कहा जाता है कि यदि इसकी कोई एक ईंट कभी गिर जाए तो निश्चित रूप से कोई दैवी प्रकोप आ पड़ता है अर्थात् किसी महापुरुष की मृत्यु, राज विद्रोह या प्राकृतिक प्रकोप कुछ भी हो सकता है।

(ग) नाज में महावीर की मूर्ति —

बिलावर नगर के पश्चिम की ओर इसके साथ-साथ बहने वाली 'नाज' नदी में एक विशाल शिला के मध्य में हनुमान की मूर्ति उकेरी हुई है, जो लोगों की श्रद्धा भावना का उसी प्रकार केन्द्र बिन्दु है जिस प्रकार बिलावर नगर में भगवान् बिल्वकेश्वर हैं।

बिलावर के लोगों का विश्वास है कि 'नाज' नदी में चाहे कितनी भयंकर बाढ़ भी आ जाए तो भी हनुमान जी की मूर्ति वाला यह पत्थर अपने स्थान से टस-से-मस नहीं होता है। उनके अनुसार यही इसके देवता अर्थात् वीर हनुमान के स्वरूप वाला होने का ज्वलंत प्रमाण है।

इस मूर्ति के आगे भी लोग मनौतियां मानते हैं जो निश्चित रूप से पूरी होती हैं।

(घ) बिलावर में अनेक प्रसिद्ध बावलियां हैं जिनमें रेङ्कियां तथा गुरनाल (गुरुनाल) की बावलियां अति प्रसिद्ध हैं। कहते हैं कि कभी बिलावर में लगभग एक सौ बावलियां विद्यमान थीं।

इन बावलियों, विशेषकर रेङ्कियां तथा गुरुनाल की बावलियों के किनारे नाग देवता, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, दुर्गा-गणेश, हनुमान की मूर्तियों वाली पत्थर की बड़ी-बड़ी ईंटें लगाई हुई हैं। यह नक्काशी डुग्गर की सांस्कृतिक इतिहास में अपना स्वर्णिम इतिहास जोड़ने की क्षमता रखती है।

इन सभी बावलियो में गुरुनाल वाली बावली कई दृष्टियों से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसके मध्य पानी के बीच नीचे से चौकोण तथा ऊपर से गोल-चपटे स्तम्भाकार चार पाए गाढ़े हुए हैं। कहते हैं बिलावर का एक पालवंशीय राजा इन पायों के ऊपर अपना विशाल पलङ्क बिछवा कर गर्मियों के दिनों में उस पर सोया करता था।

इस समय इस बावली का छत्त तो नहीं रहा है, परन्तु चारों ओर पत्थर की ईंट की बड़ी-बड़ी दीवारें अवश्य विद्यमान हैं। बावली के भीतर जाने के लिए पत्थर का एक ही द्वार है। बावली की चारों ओर की दीवारों पर नक्काशी का सुन्दर काम किया हुआ है। बावली का शीतल जल सदा प्रवाहमान रहता है।

कितना अद्भुत नमूना है यह बावली बिलावर की सांस्कृतिक परम्परा को चार चाँद लगाने के लिए। ५-६ फुट गहरे तथा प्रवाहमान पानी में स्थापित चार पाओं के ऊपर पलंग बिछा कर सोने का कितना रोमाञ्च भरा अनुभव होता होगा उस पाल वंशीय राजा को तथा उस वास्तुशिल्पी को जिसकी कल्पना से उद्भूत हुई ऐसी कला।

इनके अतिरिक्त बिलावर में अनेक छोटे-छोटे नए तथा पुराने मन्दिर तथा एक मस्जिद भी है।

(घ) संस्कृत तथा डोगरी भाषा तथा साहित्य का विकास—

पाल वंशीय राजा संग्राम पाल के समृद्ध राज्य काल (१६४३-१६७६ ई०) में बिलावर-बसोहली राज्य में संस्कृत तथा डोगरी भाषाओं तथा अनेक कलाओं को विकास करने ले लिए बड़ा प्रोत्साहन मिला। इस राजा ने अपनी सभा में विभिन्न विषयों तथा कलाओं के नौ विद्वान् अपनी सभा में रखे हुए थे, जिन्हें नवरत्न कहते थे।

इस राजा का पौत्र कृपाल पाल भी संस्कृत भाषा का बड़ा विद्वान् था। इसने इस भाषा के प्रसार के लिए सराहनीय कार्य किया था।

अठारहवीं शताब्दी के राजा अमृत पाल के राज्य काल में बिलावर में श्रीनाथ पण्डित नामक एक प्रसिद्ध ज्योतिषी हुआ था, जिसने एक ऐसा यन्त्र तैयार किया हुआ था, जिसकी सहायता से बहुत थोड़ी संस्कृत जानने वाला भी केवल एक ही दिन में वर्ष भर का पंचाङ्ग तैयार कर सकता था। इसी ज्योतिषी के समय में बिलावरी पञ्चाङ्ग का प्रचलन भी आम हो गया था। ज्योतिषी की मृत्यु के बाद इस पञ्चाङ्ग का प्रकाशन भी बन्द हो गया था।

ज्योतिषी श्रीनाथ ने अपनी तथा राजा अमृत पाल की मृत्यु की पर्याप्त समय पहले ही भविष्यवाणी कर दी थी।

राजा अमृत पाल के प्रपौत्र राजा भूपेन्द्र पाल (१८०६—१८३३ ई०) का राज्य काल तो डोगरी भाषा के विकास के लिए और अधिक कारगर तथा अनुकूल सिद्ध हुआ। इस राजा ने डोगरी के प्रसार के लिए जो सराहनीय कार्य किया वह इसके पूर्ववर्ती पालवंशीय राजाओं की अपेक्षा कहीं अधिक सराहनीय था। इसके राज्य काल में तो डोगरी प्रशासन कार्य की भाषा बन गई थी।

(ङ) चित्रकला का विकास—

पालवंशीय राजाओं में चित्रकला को प्रोत्साहन देने वाले राजाओं में संग्राम पाल का नाम सर्वप्रथम गिना जाता है जिनके नवरत्नों में एक चित्रकला मर्मज्ञ भी थे यद्यपि उनका नाम अभी तक रहस्य ही बना हुआ है।

संग्राम पाल के बाद राजा अमृत पाल तथा उनके प्रपौत्र राजा भूपेन्द्र पाल के राज्यकाल में चित्रकला का उत्तरोत्तर विकास हुआ और भारतीय चित्रकला के

इतिहास में बसोहली कलम का अपना अलग स्थान बन गया जिसने देश-विदेशों में अपनी ख्याति फैला दी।

कुछ अन्य जानकारी के अनुसार आज से लगभग ३२५ वर्ष पहले बिलावर में पं० मलूक राम तथा पं० महादेव संस्कृत के प्रसिद्ध पण्डित हुए थे जिन्होंने अपनी विद्वता की धाक जमा ली थी।

(च) इतिहासकार—डुग्गर के राजाओं का पहला राजनैतिक इतिहास लिखने वाले काहन सिंह बिलावरिया भी बिलावर की पवित्र धरती के सपूत थे जिन्होंने उर्दू भाषा में—'तारीख राजगान जम्मू' नामक इतिहास-पुस्तक लिख कर डुग्गर धरती काही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारत का बहुत बड़ा उपकार किया था।

(छ) संगीतकार—बिलावर में पं० सुखदेव नामक प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे जिनकी मृत्यु कुछ वर्ष पहले हुई थी। संगीत विद्या के प्रवीण तथा आकाशवाणी के कलाकार मनमोहन पहाड़ी ने सबसे पहले अपना गुरु इन्हीं को बनाया था।

(ज) तान्त्रिक—बिलावर में पण्डित शिवनन्दन पाधा नामक तान्त्रिक विद्वान् भी हो गुजरे हैं, जिन्होंने चम्बे के राजा को तान्त्रिक विधि से सुकराल नामक स्थान (बिलावर से छः किलोमीटर उत्तर में) पर महाकाली का मन्दिर बनवाने की प्रेरणा दी थी, जिसका निर्माण सन् १७४८ से १७६४ ई० के बीच हुआ था।

(झ) बिलावर की सांस्कृतिक परम्परा के बिखरे सूत्र :—

इस नगर तथा इसके आस-पास के प्रदेश में यहां की संस्कृति के बिखरे सूत्र देखने को मिलते हैं, जिनका सर्वेक्षण करने पर इस प्रदेश की सांस्कृतिक परम्परा का सामूहिक रूप हमारे सामने स्पष्ट हो जाता है। इन सभी का अंक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :—

(क) गांवों के नाम :—

1. बेलापुर>बिल्लपुर>बिलावर,
2. देवालय>देवल>द्योल
3. कृष्णपुर>किशनपुर
4. सुकराला>सुकराल
5. रामपुर>रामपुर इत्यादि।

(ख) लोगों के नाम :—

रामचन्द्र>रामचन्द, तिलकराज, सूर्य राम, रमेश चन्द्र>रमेश चन्द, प्रभुदयालु>प्रभदयाल, हंसराज>हैंस राज, शान्ति स्वरूप>शान्ति सरूप, योगेन्द्र पाल इत्यादि।

मयादेवी, कुन्ती देवी, प्रेमलता, स्नेहलता, राजकुमारी, गंगा>गंगी, सुभद्रा देवी>सभद्रा, अन्नपूर्णा देवी, यमुना>जमना, शकुन्तुला देवी इत्यादि।

(ग) **पशुओं के नाम**—गाय :—सरयू>सरजू, गंगा>गंगी, यमुना>जमना, बुद्धां (बुध) इत्यादि, भैंस :—वीरां (गाय, भैंस दोनों के लिए) पीरां दत्ती।

(घ) **पर्व त्योहार**—वैसे तो बिलावर तथा इसके समीपवर्ती प्रदेश में डुग्गर के लगभग सभी त्योहार बड़े उत्साह तथा उल्लास के साथ मनाए जाते हैं, परन्तु चैत्र-चौदस, शिवरात्री, वैशाखी, जन्माष्टमी, दीपावली नवरात्र दसहरा, लोहड़ी, के त्योहारों पर यहां जो हर्ष और उल्लास भरा वातावरण बन जाता है उसकी तुलना नहीं की जा सकती। इनमें भी शिवरात्री तथा वैशाखी के त्योहारों पर तो यहां उल्लेखनीय जमघट रहता है। तथा अन्तिम दिन राधा-कृष्ण की झांकियां निकलती हैं। आश्विन के नवरात्रों में घरों में देवी-पाठ, कन्या पूजन, खेतरी आरोपण, घट स्थापन, आदि के साथ-साथ लोग रात के समय रामलीला का आनन्द भी लेते हैं। दशहरे वाले वही रावण, कुम्भकर्ण तथा मेघनाद के पुतले जलाने का कार्यक्रम चलता है। जम्मू प्रान्त में इस समय वैशाखी पर लगने वाले मेलों में दो ही प्रसिद्ध हैं—बिलावर तथा ऐरवां में। इन दो में भी बिलावर वाला मेला और अधिक प्रसिद्ध है।[1]

(ङ) **रीति-रिवाज** :—(i) बिलावर के इलाके की सांस्कृतिक परम्परा में हर धर्म के विश्वासों को समानता का अधिकार प्राप्त है। दूसरे शब्दों मे इस में सभी धार्मिक विश्वासों का समन्वय है। जहां बिलावर के शिव-मन्दिर के आगे हिन्दु-मुसलमान सिक्ख सभी श्रद्धा से अपना सिर झुकाते हैं, वहां यत्र-तत्र अनेकत्र बने पीरखानों के आगे हिन्दू-लोग भी सिर झुकाते हैं। वे अपने घरों में गाय-भैंसें ब्याहने पर जब तक पीर खाने में जाकर दूध, दही आदि चढ़ा कर अपनी श्रद्धा व्यक्त नहीं कर लेते हैं तब तक उसे किसी को नहीं देते हैं।

(ii) बिलावर से उत्तर-पश्चिमी भाग में ७-८ किलोमीटर की दूरी पर कौह्ग नामक स्थान पर नरसिंह भगवान् का प्राचीन देवालय है यहां परम्परा से ही मेघ (हरिजनों का एक सम्प्रदाय) पूजा करते आ रहे हैं। वहां सवर्ण हिन्दु जाते हैं चरणामृत, प्रसाद लेते हैं तथा यज्ञ-यागादि करते हैं। यह भी अपने ढंग का अद्भुत उदाहरण है जहां किसी मन्दिर में परम्परा से हरिजन ही पुजारी हों और वहां सवर्ण हिन्दू भी श्रद्धा भावना से दर्शनार्थ जाते हों।

---

१. चैत्र के नवरात्रों में वर्षारम्भ का उत्सव मनाया जाता है। दोनों नवरात्रों में लड़कियां दीवारों पर गोबर की माताएं बना कर पूजन करती हैं।

(iii) इस प्रदेश के प्रत्येक जलाशय-झील, सरोवर बावली, कुआं, जल-प्रपात, नदी तट आदि में प्रधान रूप से शिव तथा नाग एवं अन्य देवी-देवताओं की किसी न किसी रूप में मूर्तियां विराजमान हैं जो डुग्गर संस्कृति की धर्म प्राणता की प्रतीक हैं। लोग इनके आगे नित्य प्रति अपनी श्रद्धा-भावना व्यक्त करते हैं।

(iv) इस प्रदेश के प्राय: प्रत्येक घर, कुल देवता तथा अन्य देवी-देवताओं की मूर्तियां स्थापित की हुई होती हैं। उनके स्थान को ठाकर-दुआरा, थान आदि नामों से अभिव्यक्त किया जाता है । यदि नित्य नहीं तो पर्व-त्योहारों पर इनकी अवश्य पूजा-आराधना करते ही हैं।

(v) इस प्रदेश के किसान लोग रबी तथा खरीफ दोनों फसलों का कृषि-कार्य करने से पहले तो अपनी हलों की संक्षिप्त रूप से पूजा करते हैं, परन्तु खरीफ की फसल लगाने के बाद 'मच्चघो' नामक त्योहर तो किसानों द्वारा बड़े उत्साह् तथा उल्लास भरी मस्ती के साथ मनाया जाता है।

(vi) आज से लगभग ५० वर्ष पहले इस प्रदेश में स्त्रियों द्वारा घूंघट काढना तथा घर के बाहर जाने पर घग्घरा पहनने की प्रथा थी जो अब समाप्त प्राय: है। यह सब नयी शिक्षा का प्रभाव है।

(vii) **खान-पान, रहन-सहन आदि :—**

इस प्रदेश के लोगों के खान-पीन तथा रहन-सहन आदि से भी यहां की सांस्कृतिक परम्परा का पता चलता है।

इस प्रदेश में लोग प्रात: नाश्ते में रोटी विशेष कर मक्की की रोटी, परांठा, दही आदि खाते हैं। अब चाय की प्रथा भी आम प्रचलित हो जाने से नाश्ते के साथ चाय लेने की प्रथा भी चल पड़ी है।

दोपहर के भोजन में प्राय: चावल गेहूं या मकई, (मक्की रोटी) दाल, सब्जी, कभी-कभी मांस लस्सी, दही तथा कई घरों में म'द्रा, खट्टा व्यंजन अम्बल आदि रहते हैं। इनके अतिरिक्त विशेष अवसरों पर परांठे, पूड़ी, तथा तले हुए भठूरे भी इस प्रदेश के लोग पकाते हैं। आज २५-३० वर्ष पहले विशेष अवसरों पर सुच्चियां, घियूर, बनाने की प्रथा भी इस प्रदेश में प्रचलित थी, जो प्राय: अब लोप हो चुकी है। रात को भोजन में प्राय: मक्की की रोटी तथा चपाती रहती है। सभी कुलीन घरों में भोजन करने से पहले भगवान्, कुल देवी या कुल देवता या खुदा आदि को अर्पण करके ही लोग भोजन करते हैं।

(viii) अधिकांश घरों में अब भी भोजन बनाने से पहले चूल्हा तथा उसके आस-पास के स्थान में गोबर तथा पापड़ी से लीपा-पोती करके उसे पवित्र कर लिया जाता है।

(ix) भोजन बन जाने के बाद अपने-अपने इष्ट देव को भोजन का प्रसाद अर्पण करके भोजन बनाने वाली स्त्री पांच यज्ञ करती है। इस काम के

लिए इस प्रदेश की स्त्री छोटी-छोटी टिक्कियां भी पकाती हैं जिन्हें गौ-ग्रास कहते हैं।

(x) इस प्रदेश के लोग अपने कार्य की सफलता या सिद्धि के बारे में जब कभी भी कोई आशंका देखते हैं वे झट भगवान, कुल देवता, पीर, महावीर, आदि के आगे झट मनौती-सुक्खन या स्रीनी मनाते हैं। सुक्खन प्रायः अधिक व्यय साध्य होती है जबकि स्रीनी के लिए कोई अधिक खर्च नहीं करना पड़ता है। उसके लिए थोड़ी-सी चीनी, गुड़, दूध या दही की एक-एक कटोरी से भी काम चला लिया जाता है।

इसी प्रकार घर में गाय या भैंस के ब्याहने पर उनके दूध, दही, घी आदि से प्रायः पीर बाबा की या बिलावर के शिव मन्दिर में स्थित भोले बाबा की पूजा-आराधना करके ही लोग दूध, दही आदि का स्वयं प्रयोग करते हैं।

(xi) इस प्रदेश में बच्चा (पुत्र) उत्पन्न होने पर विशेष उत्सव मनाये जाते हैं जैसे बधावे गाने, गुड़, लड्डू आदि बांटना, बच्चे की सुख-समृद्धि तथा आयु वृद्धि की कामना से मार्कण्डेय ऋषि की प्रतीक गाय के गोबर की 'विहाई' बनाना इत्यादि। कई घरों में गर्भ के आठवें महीने की समाप्ति पर गर्भवती स्त्री का ठुआं (आठवां) उत्सव मनाया जाता है। परन्तु खेद है कि लड़की उत्पन्न होने पर लोग नांक-भौंह ही चढ़ाते हैं, चाहे पहली बेटी का आगमन ही क्यों न हुआ हो।

इस प्रदेश में बच्चे का मुंडन संस्कार विशेष हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। बाकी संस्कार जैसे कर्णवेध, यज्ञोपवीत, विद्यारम्भ आदि केवल कहीं-कहीं रस्मी तौर पर ही मनाए जाते हैं। हां, विवाह संस्कार विशेष हर्ष का केन्द्र होता है। किन्हीं घरों में लड़के की सगाई पर भी विशेष पूजन तथा गीत-संगीत के कार्यक्रम चलते हैं।

महंगाई के इस युग में या आधुनिक व्यस्तताओं के कारण विवाह संस्कार पर किये जाने वाले उत्सवों के कार्यक्रमों में भी परिवर्तन होते जा रहे हैं। पहले लड़की वाले घर में आई बारात को तीसरे दिन वापस करते थे परन्तु अब दूसरे हा दिन विदा कर देते हैं, फिर शहरों से इतना अन्तर अवश्य है कि बारात को दो समय भोजन अवश्य करवाते हैं।

मनुष्य की मृत्यु हो जाने पर किये जाने वाले प्रेत-संस्कारों की प्रथा लगभग वही है जो डुग्गर के अन्य भागों में प्रचलित है।

बिलावर के लोगों के व्यवसाय—

इस प्रदेश के लोगों के व्यवसायों को हम दो भागों में बांट सकते हैं :—

(क) बिलावर जैसे केन्द्रीय नगर के व्यवसाय तथा

(ख) बिलावर के आस-पास बसने वाले लोगों के व्यवसाय।

(क) बिलावर क्योंकि एक आधुनिक सुख-सुविधाएं प्राप्त नगर होने के नाते उसी ढंग से हर दृष्टि से पनप रहा है, अतः यहां पर व्यवसाय की अनेक सुविधाएं उपलब्ध हैं जैसे—दुकानदारी, सरकारी तथा गैर सरकारी नौकरियां जन स्वास्थ्य विभाग, सड़क निर्माण विभाग आदि हैं। वकालत का व्यवसाय, प्रार्थना पत्र लिखने का व्यवसाय, मांस-मछली बेचना, दूध बेचना, रेडियो टेलीविज़न, घड़ी आदि की मुरम्मत का काम, बालों की कटाई, लोहार, सुनार, आदि के व्यवसाय इत्यादि अनेक व्यवसाय पनप रहे हैं।

(ख) बिलावर के आस-पास के गांवों में खेती बाड़ी का काम, मजदूरी, सेना पुलिस में मुख्यरूप से तथा अन्य प्रकार की नौकरियां, व्यापार आदि अनेक व्यवसाय प्रचलित हैं। जिनमें लोग अपनी-अपनी सुविधा तथा रुचि के अनुसार भाग लेते हैं और अपनी जीविका चलाते हैं।

अब क्योंकि गांव के बच्चों को पढ़ने की सुख-सुविधाएं प्राप्त हो रही हैं अतः वे भी बिलावर नगर के बच्चों के साथ कंधे-से कंधा मिला कर आगे बढ़ते हुए नौकरी के बड़े-बड़े पदों पर पहुँच रहे हैं। परन्तु इसके बावजूद भी ऐसे लोग अपना खेती का व्यवसाय भी साथ-साथ चला रहे हैं, बल्कि उसे आधुनिक वैज्ञानिक ढंग से चलाने का भी प्रयत्न कर रहे हैं। कई लोग अब बाग भी लगा रहे हैं जिनमें आम, केला, निंबू, किन्नूं, सन्तरा, माल्टा, लीची, अंगूर, अमरूद आदि फलों वाले पेड़ लगाए जा रहे हैं, जो इस प्रदेश की मुख्य उपज मक्की, धान, गेहूं आदि के साथ लोगों की आय का उत्तम साधन बनते जा रहे हैं।

लोक साहित्य

इस प्रदेश का लोक-साहित्य बड़ा प्रसिद्ध तथा समृद्ध है जिसमें लोक कथाएं, लोकगीत लोक वार्ता, मुहावरे, पहेलियां, सुभाषित आदि सम्मिलित हैं, जिनका संक्षिप्त दिग्दर्शन इस प्रकार है :—

(क) **लोक कथाएं**—कांव तथा चिड़ियां, बब्बरू वाली माई आदि।

(ख) **लोकगीत**—

(i) कलुए दी वहूल

(*ii*) राजा जोगी बनेआ
राजा जोगी बनेआ, कन्नें मुंदरां पाइयां।
इनें मुंदरें जोग कमाया सेइयो॥

(ii) चन्न म्हाड़ा चढ़ेआ उप्पर रजौरी
आई जायां चन्नां ते मिली जायां चोरी—इत्यादि

(iii) तेरे मैह्‌लें दे बिच-बिच बे बावल डोला अड़ी वो गेआ इत्यादि
(सुहाग गीत)

(iv) (क) बेह्ड़ै साढ़ै आ बन्नेआ कोल फुल्लें दी छां।
सेह्रा तुगी अऊं दिन्नियां लरजां देऐ तेरी मां। इत्यादि
(घोड़ी गीत)

(ख) बेह्ड़ा साढ़ा पद्दरा मदान
कु'न्न घोड़ा पीड़िया मेरी जान इत्यादि—

(v) (क) कप्पड़े धोआं कन्ने रोआं कूंजुआ
मुखों बोल जबानी ओ !
मनसो मेरिये जिंदे—
मुखों बोल जबानी ओ। इत्यादि (विरह गीत)

(ख) छाती कन्ने छाती मत ला कूंजुआ
मेरे भज्जी जंदे बीड़े ओ !
मनसो मेरिये जिंदे
मेरे भज्जी जंदे बीड़े ओ
बीड़ें दा नेईं कर बसोस मनसो
तुगी बीड़ें दी जोड़ी ओ
मनसो मेरिये जिंदे
तुगी बीड़ें दी जोड़ी ओ। इत्यादि (विरह गीत)

(vi) चैत्तर चित्त बिच लगियै चिंता
किसनूं हाल सुनावां मैं
मोहन बैठे बिच मथरा दे
किसनूं गले लगावां मैं। इत्यादि (बारहमासा)

(vii) ए दे माता दे कोकलें गी लाई देने सुच्चे।[1] इत्यादि

(ग) **मुहावरे, कहावतें, पहेलियां, सुभाषित आदि :—**

(I) उठ नेईं सक्कां फिट्टे-मूंह् गोड्डें दा।

(II) जागत रोंदे छाई गी बुड्ढे चा कलाड़ियें दा। इत्यादि (मुहावरे)
नां घर बसदे बड़ै सज्जनै
नां घर बसदे गज्जनै बज्जनै—इत्यादि (कहावत)

☐ हरी डंडी सब्ज दाना
बक्त पौऐ मंगी खाना (पहेली, अजवायन)

---

१. जब यात्री लोग पैदल यात्रा करते हुए सुकराला माता के लिए दर्शन के लिए जाते हैं तो गांव की लड़कियां यह वाक्य उच्चारण करके उनसे पैसे मांगती है।

(III) मैं आया हा तू गेआ हा
मेरा धक्का लग्गा हा
तूं रोन की लगा हा ? (पहेली, घर का द्वार)

☐ चल बै भौरेआ उड़ चलिये अपनै देस ।
वगान्ने जाए कदें नि होंदे अपने भाएं किन्ना लाइये हेत ।

☐ चलदा कक्ख सूत्तरै
ओह्‌ बी कम्म कसूतरै दा ।
खड़ोते दा मूत्तरै दा
ओह्‌ बी कम्म कसूतरै दा ।

☐ लाड़ी, कुड़म, कमीन
त्रैवै मिट्ठे चाह्‌ दे । (सुभाषित)

☐ मंगल-टंगल, बुद्ध-स्याना,
बीर अ'न्ना, शुक्कर काना,
बारें घरा दा नि जाना,
तार जोगनी दा बार,
सुआरें घरै दा जाना
ते सुआरें घर औना (हास्य-व्यंग्यात्मक)

☐ चौथा पैह्‌र ढलेआ
सरमाली आटा मलेआ ।
मे'ई[1] बजाया सिङ्ङ
सरमाली पाई हिङ्ङ ।

☐ हरड़-बेह्‌ड़े आमले
बिच पाई गलो ।
ढल्ला[2] शाह्‌ आखदा
मेरा भुट्टू राजी रौह्‌ (वैद्यक नुस्खा)

☐ दिक्ख लिश्कै बिजली
पच्छम झुल्लै व्हा
डक कैह्‌ सुन भड्डरी
बच्छे अंदर ला ।''

☐ नां सिर सिज्जै करकरें
सिंह धरयाये जान

I. भैंस
II. बिलावर का प्रसिद्ध ब्राह्मण शाहुकार (स्वर्गीय)

डक्क कैह् सुन भड्डरी
चुलियें नीर बकान ।

इस प्रदेश में अनेक लोक-विश्वास भी प्रचलित हैं, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं ।

अपशकुन सूचक—

I. दिन में घोड़ी का व्याहना ।

II. आधी रात में गाय का रम्भाना ।

III. बिल्ली द्वारा रास्ता काटना । आदि ।

बिलावर के सांस्कृतिक सर्वेक्षण के संदर्भ में यह तथ्य विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं कि नव-जागरण के आधुनिक युग के प्रभाव से बिलावर नगर तथा इसके आस-पास के लोगों की बोली में भी आमूल-चूल परिवर्तन आया है । जैसे बिलावर में पहले भविष्यत् कालिक कुछ कृदन्तों के रूप इस प्रकार थे—रिंगा, खांगा, पींगा, जांगा इत्यादि जो अब आम डोगरी में प्रचलित (उत्तम पुरुष) भविष्यत् कालिक कृदन्त रूपों के समान ही प्रयुक्त होते हैं—रौंह्ङ, खांह्ङ, पीङ, जांह्ङ इत्यादि ।

इस प्रकार ऊपर दिये गये दिग्दर्शनात्मक तथा यथा सम्भव विवरणात्मक सर्वेक्षण से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि जहां बिलावर का राजनैतिक इतिहास बरसाती नदी के समान उथल-पुथल भरा होने के कारण कई ऊहा-पोहों से गुजरता हुआ हमारे तक पहुँचता है वहां इसका सांस्कृतिक इतिहास सुर-सरिता गङ्गा के समान अपनी शान्त-पवित्र परम्पराओं को आप्लावित करके अमर करता हुआ वर्तमान समय तक पहुँचा है । यद्यपि इस प्रदेश की इस अमर सांस्कृतिक थाती का यथोपलब्ध तथ्यों के आधार पर सर्वेक्षण दिया गया है तो भी इसमें पूर्णता की सम्भावना करना युक्ति-संगत न होगा । □

ऊधमपुर नगर : सांस्कृतिक अध्ययन

□ शिव निर्मोही

जम्मू-कश्मीर राज पथ पर जम्मू से लगभग पैंसठ किलोमीटर की दूरी पर मध्य शिवालिक पर्वत शृंखलाओं के आंचल में अवस्थित ऊधमपुर नगर उत्तर भारत के स्वच्छ एवं सुंदर नगरों में से एक है। यह नगर इस समय लगभग तीन किलोमीटर वर्ग क्षेत्र में परिव्याप्त है। इस नगर के उत्तर-पूर्व में तवी नदी ओर पश्चिम में 'बि'रमां' तथा 'दुद्दर' उपनदियां प्रवाहित हैं।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि-ऊधमपुर नगर का समस्त क्षेत्र सन् १८२३ ई० के पूर्व चनैनी राज्य का ही एक भाग था। चनैनी के हिन्ताल राजाओं ने अपने राज्य की सीमाओं को बि'रमां उपनदी पर बढ़ाया था। हिन्तालों के प्रतिद्वन्द्वी रसियाल थे। वर्तमान ऊधमपुर के निकट गुप्त गंगा की पहाड़ियों के निकट हिन्तालों और रसियालों में कई छोटी-मोटी लड़ाइयां हो चुकी थीं जिनमें हिन्ताल ही विजयी रहे थे। ऊधमपुर के दक्षिण भारत में भूती नामक राज्य था जिसके शासक भतियाल नामक जाति के राजपूत थे। मतियालों का राज्य क्रिमची से लांदर तक परिव्याप्त था। भतियालों और हिन्तालों में दौत्य सम्बन्ध थे अतः वे लड़ाई के समय एक-दूसरे की सहायता भी करते थे। ऊधमपुर के पूर्व में तवी नदी के पार जगनपुरी नामक राज्य था जिस पर कभी बन्दरालियों का तो कभी जम्मू के जमवालों का अधिकार हो जाता था। ऊधमपुर के पूर्व दक्षिण में विशाल पर्वतीय राज्य बन्दरालता था।

सन् १८२२ ई० में जम्मू नरेश गुलाब सिंह के छोटे भाई सुचेतसिंह ने बन्दरालता के राजा चन्द्रध्रर देव पर आक्रमण करके उसके राज्य पर अधिकार कर लिया। तत्पश्चात् उसने इसी वर्ष चनैनी के राजा द्याल चन्द पर भी आक्रमण किया और चनैनी राज्य का विलय अपने राज्य में कर लिया। चनैनी के राजा द्याल चन्द ने पंजाब नरेश रंजीत सिंह के लाहौर स्थित दरबार में

उपस्थित होकर अपनी पूर्ण निष्ठा पंजाब नरेश के प्रति व्यक्त की। पंजाब नरेश रंजीत सिंह ने राजा गुलाब सिंह को चनैनी का राज्य राजा द्याल चन्द को वापिस लौटाने का आदेश लिख भेजा। १८२३ ई० में राजा गुलाब सिंह और राजा द्याल चन्द के मध्य एक सन्धि हुई और इसी सन्धि के अन्तर्गत हिन्ताल राजा द्याल चन्द ने ऊधमपुर का क्षेत्र गुलाब सिंह को दे दिया और गुलाब सिंह ने चनैनी का राज्य राजा द्याल चन्द को वापिस लौटा दिया।

ऊधमपुर क्षेत्र का महत्त्व—सैनिक दृष्टि से राजा गुलाब सिंह इस क्षेत्र को बहुत ही महत्त्वपूर्ण समझता था। पंजाब नरेश रंजीत सिंह से आज्ञा प्राप्त करके गुलाब सिंह ने भूती राज्य के अन्तिम राजा हिम्मत सिंह भतियाल को सन् १८२२ में पद्च्युत कर दिया था। सन् १८२२ में ही बन्दरालता राज्य पर अधिकार करने के बाद जम्वालों ने इस पर भी पूर्ण अधिकार कर लिया था। रियासी राज्य के शासक दीवान सिंह और उसके पुत्र भूपसिंह को सन् १८१७ ई० में राजा गुलाब सिंह ने पहले ही युद्ध में परास्त करके इस राज्य पर अधिकार लिया था। इन राज्यों के राजवंशजों के उत्पात को शान्त करने के लिए गुलाब-सिंह ने ऊधमपुर क्षेत्र को एक सैनिक शिविर के रूप में चुना। गढ़ी नामक स्थान पहले भी सैनिक शिविर रहा था, अतः गढ़ी के निकट ही गुलाब सिंह ने एक नए सैनिक शिविर का निर्माण करने का निश्चय किया।

नगर की स्थापना—किश्तवाड़ राज्य के अन्तिम राजा मुहम्मद तेगसिंह को १८२० ई० में वन्दी बनाने के बाद राज्य की व्यवस्था का निरीक्षण करने के लिए राजा गुलाब सिंह ने अपने ज्येष्ठ पुत्र ऊधमसिंह को किश्तवाड़ भेजा। किश्तवाड़ राज्य का अवलोकन करके कुंवर ऊधम सिंह मन्त्री लखपत के साथ जम्मू लौट रहे थे तो एक रात्रि को उन्होंने वर्तमान ऊधमपुर के उत्तर में स्थित पर्वतीय ढलान पर बसे गांव गंगेड़ा में विश्राम किया। प्रातः उठते ही उनकी दृष्टि गंगेडा गांव के नीचे फैले सीढ़ीनुमा मैदान पर पड़ी जो वन्य वृक्षों से उस समय भरपूर था। कुंवर ऊधम सिंह ने मन्त्री लखपत से इस क्षेत्र में एक नया नगर बसाने की इच्छा व्यक्त की। गंगेड़ा में अल्प विश्राम करने के बाद कुंवर ऊधम सिंह जम्मू वापिस लौट आए और जम्मू से वे लाहौर चले गए और वहीं एक दुर्घटना में १८४० ई० में उनकी मृत्यु हुई।

मन्त्री लखपत ने कुंवर ऊधम सिंह की मृत्यु के बाद राजा गुलाब सिंह को स्वर्गीय कुंवर की इच्छा बताई। गुलाब सिंह ने मन्त्री को कुंवर ऊधम सिंह की स्मृति में नया नगर ऊधम सिंह के नाम पर ही ऊधमपुर बसाने की अनुमति दे दी।

नए नगर की संरचना—नया नगर ऊधमपुर की संरचना डुग्गर में स्थित अन्य राजपूतों द्वारा संस्थापित नगरों के आधार पर ही की गई। बन साफ करके

देविका नदी के तट पर राज महल का निर्माण किया गया। राज महल के भीतर कई भव्य कमरे बनाये गए और भवन के इर्द-गिर्द ऊंची प्राचीर खड़ी की गई। ऊधमपुर के महल डुग्गर के अन्य राज महलों से कई दृष्टियों से भिन्न भी हैं। इन महलों के भीतर भीति चित्र नहीं बनाए गए हैं। प्रमुख प्रकोष्ठ खुले, हवादार तथा विशाल हैं। इनकी छत्तों पर लकड़ी के बड़े-बड़े शहतीर हैं। मुख्य महल के सन्मुख खुला प्रांगण है। ऐसा ही एक विस्तृत प्रांगण महल के पार्श्व में भी है जो सम्भवत: उद्यान लगाने के लिए खाली रखा गया था। रसोई घर मुख्य महल से थोड़ी दूरी पर निर्मित है। रानियों द्वारा देविका नदी में स्नानार्थ जाने के लिए सीढ़ीनुमा प्राचीरों से बद्ध एक अलग पथ बनाया गया है।

महल के सन्मुख एक खुला चौगान है जिसे स्थानीय लोग 'दब्बड़' नाम से अभिहित करते हैं। दब्बड़ के नीचे लोगों को रहने के लिए सरकार की ओर से जमीन प्रदान की गई। प्रारम्भिक अवस्था में महल के निकटवर्ती क्षेत्र में पच्चास के लगभग नए नगर बसे। किन्तु नवागन्तुकों को इस नगर में विशेष सुविधाएं उपलब्ध नहीं करवाई गईं जिसके कारण आरम्भिक अवस्था में नगर का विकास अति धीमी गति से हुआ।

अनुमानत: १८४२ ई० में ऊधमपुर नगर की नींव स्वामी नित्यानन्द जी के पिता चन्द्रमौली के पौरोहित्य में रखी गई और नींव रखते समय उन्होंने भविष्य-वाणी की कि एक सौ वर्ष के बाद यह नगर डुग्गर क्षेत्र का प्रसिद्ध नगर होगा और इस नगर का विकास अति तीव्र गति से होगा।

१८५० तक महल बन गए। कुछ घर भी निर्मित हुए। एक छोटा-सा बाज़ार भी बना। बन्दरालता, जगनपुर, क्रिमची आदि राज्यों की राजधानियों के उजड़ने से कुछ धनाढ्य परिवार नए ठिकानों की खोज में इधर-उधर भटकने लगे। किन्तु ऊधमपुर को उस स्थिति में भी स्थायी निवास के रूप में बहुत कम लोगों ने अपनाया। ऊधमपुर के निकटवर्ती गांवों यथा उमाड़ा, तलाई कांगड़ा, तलाई सुक्की, कटलर, सियालता, सियालता दलाह, रौंथ, संगूर, चेरी सैला और बाड़ेयां आदि गांवों के लोग इस नए नगर की ओर तनिक भी आकर्षित नहीं हुए।

महाराज रणबीर सिंह ऊधमपुर के महत्त्व को बढ़ाना चाहते थे। उन्होंने १८६५ ई० में नगर में न्यायालय स्थापित करने की आज्ञा प्रदान की और जब उन्होंने बंदोबस्त अराज़ी का विभाग स्थापित किया। तब उन्होंने ऊधमपुर को ज़िला का रूप दे दिया। ज़िला ऊधमपुर अपने मूल में क्षेत्रफल की दृष्टि से बहुत बड़ा जिला था। इसके अन्तर्गत वर्तमान ज़िला डोडा भी था और इस जिला की सीमाएं पीर पंचाल को स्पर्श करती थीं।

न्यायालय तथा ज़िला केन्द्र स्थापना के बाद बुद्धिजीवियों, व्यापारियों और धनाढ्य व्यक्तियों तथा सुशिक्षित लोगों का ध्यान भी इस नगर की ओर आकर्षित

हुआ। रामनगर, क्रिमची, मगातू, चनैनी आदि उपनगरों से कई परिवार ऊधमपुर में आकर बसने लगे। व्यापारियों ने अपनी बड़ी-बड़ी दुकानें ऊधमपुर में स्थापित कर लीं। देखते ही देखते ऊधमपुर का बाज़ार चौक चबूतरे तक बढ़ गया। कई नए मुहल्ले स्थापित हो गए किन्तु १९४० तक ऊधमपुर का रूप एक कसबे के रूप में ही सुस्थिर रहा। किन्तु १९४७ के बाद ऊधमपुर का जिस तीव्र गति से चहुंमुखी विकास हुआ, ऐसा विकास डुग्गर क्षेत्र में जम्मू नगर के अतिरिक्त अन्य किसी नगर का न हो सका। इसका मुख्य कारण ऊधमपुर के निकट गढ़ी नामक स्थान पर सैनिक छावनी की स्थापना ही माना जाता है।

जनसंख्या—स्थानीय वयवृद्धों के अनुसार १८५० ई० के लगभग ऊधमपुर की जनसंख्या केवल मात्र पांच सौ के लगभग ही थी। किन्तु ज़िला केन्द्र और न्यायालय खुलने के बाद १९०० में इसकी आबादी दो हज़ार तक ही थी। १९४७ से पूर्व भी इस नगर की जनसंख्या चार हज़ार से अधिक नहीं थी। १९४७ के बाद इस नगर की जनसंख्या में तीव्र गति से विकास हुआ और १९०१ की जनगणना के अनुसार इस नगर की जनसंख्या २२९०९ थी जो अब बढ़ कर लगभग तीस हज़ार हो गई है। ऊधमपुर में पुरुषों की अपेक्षा नारियों की संख्या अधिक है। १९८१ की मत-गणना के अनुसार इस नगर में पुरुषों की संख्या १०७१६ थी और महिलाओं की संख्या १२१९८ थी। इस नगर में १९८१ की मतगणना के अनुसार कुल ४४६८ घर थे जो अब बढ़ कर छ: हज़ार के लगभग हैं।

ऊधमपुर के लोग—ऊधमपुर में सभी धर्मों के लोग भ्रातृ-भाव से रहते हैं। नगर में अधिकांश घर हिन्दुओं के हैं और १९८१ की मतगणना के अनुसार इस नगर में हिन्दुओं की संख्या २०३७४ थी। इस तगर में १९४७ के बाद अधिकृत कश्मीर से आए कई सिक्ख परिवार भी आ कर बसे। इस नगर में १९८१ की मतगणना के अनुसार १२४१ सिक्ख सदस्य भी रहते हैं। इस नगर में मुसलमानों की संख्या केवल ९९४ है, जिनमें ६०७ पुरुष और २८७ महिलाएं हैं। इसाइयों की संख्या केवल २९९ है जिनमें १६२ पुरुष और १३७ महिलाएं हैं।

इस नगर के हिन्दू भी कई जातियों और उप-जातियों में विभाजित हैं। नगर में एक तिहाई से अधिक ब्राह्मण हैं जो बैगड़ा, खजूरिया पुरोहित, वलकड़िया, सदोत्रा, मगोत्रा, दुबे, बड़ेआल, केसर, धरमट्ट, पाधा, केरनी आदि उपजातियों में विभाजित हैं। राजपूतों में अधिकांश जमवाल, हिन्ताल, भतियाल, बन्दराल, और बलोआल हैं। चन्देल और बदन भी अपना सम्बन्ध राजपूतों से जोड़ते हैं। किन्तु ये सभी मुसलमान हैं। खन्ना, मल्होत्रा, आनन्द, अबराल आदि अन्य क्षत्रिय परिवार हैं। महाजनों की आबादी नगर में पर्याप्त है। प्राय: ऊधमपुर के अधिकांश व्यापारी दुकानदार और ठेकेदार महाजन लोग ही हैं।

हरिजनों के परिवार नगर के उत्तरीय भाग में एक मुहल्ले में रहते हैं। किन्तु कई परिवार नगर के मध्य और आदि में भी बसते हैं।

शनि देवता के पुरोहित—ऊधमपुर के उत्तर में जखैह्नी के निकट शनि देवता के पुरोहितों की एक अलग बस्ती है। पहले ये लोग टूटे-फूटे कच्चे मकानों में एक पर्वतीय ढलान के नीचे अति निर्धनावस्था में रहते थे किन्तु अब बीस सूत्रीय कार्यक्रम और इन्दिरा आवास योजना के अन्तर्गत इनके रहने के लिए पक्के मकान सरकार की ओर से उपलब्ध कराये गए हैं। ये लोग अपने आपको पंडित कहते हैं और सामुद्रिक शास्त्र के ज्ञाता हैं। ये लोग गर्मियों में कश्मीर तथा अन्य पर्वतीय क्षेत्रों में चले जाते हैं और लोगों के हाथ देख कर उनका भाग्य बतलाते हैं। सर्दियों में ये लोग भारत के कई भागों का परिभ्रमण करते हैं। प्रत्येक शनिवार को इनके बच्चे छोटी-छोटी टोलियों में हाथ में लोहे की बाल्टी पकड़े 'आज शनिवार है' कहते गलियों और बाज़ारों में घूमने लगते हैं। इनके अधिकांश बच्चे अशिक्षित और दुर्बल हैं। अब भी स्वतन्त्रता के चालीस वर्ष पूरे होने पर भी इन लोगों के आर्थिक जीवन में विशेष सुधार नहीं हुआ है। इनमें अधिकांश परिवार निर्धनता की रेखा के नीचे हैं और अति मलीनता का जीवन जीते हैं।

ऊधमपुर की निकटवर्ती पहाड़ियों पर गुज्जर बस्तियां हैं। ये लोग गाय-भैंस का दूध बेचने नगर में आते हैं।

इन लोगों के अतिरिक्त नाई, धीवर, धोबी, लुहार, तरखान, जुलाहे, नाथ, जोगी आदि जातियों के लोग भी नगर में रहते हैं। इनमें से अधिकांश लोगों के मकान अपने हैं और ये लोग अपने जातिगत व्यवसासों के अतिरिक्त और भी व्यवसाय करते हैं।

वेशभूषा—वेश-भूषा का सम्बन्ध जलवायु से है। जलवायु की दृष्टि से ऊधमपुर स्वास्थ्यवर्द्धक है। यहां न तो अधिक गर्मी पड़ती है और न अधिक सर्दी होती है। गर्मियों में नगर का तापमान अधिक से अधिक परं ४२° सी० तक चला जाता है और सर्दियों में तापमान १·५° सैंटीग्रेड से भी नीचे आ जाता है। यहां वर्षा भी पर्याप्त होती है और १९८३ के आंकड़ों के अनुसार यहां १५८८६१ मिलीमीटर वर्षा मापी गई। यहां के स्थानीय निवासी डोगरा लिबास ही पहनते हैं। वही ढीला-ढाला या तंग चूड़ीदार पायजामा, लम्बा कुर्ता, कुर्ते के ऊपर बास्कट, बास्कट के ऊपर बन्द गले का कोट या खुले गले का घुटनों तक लम्बा कोट, सिर पर पगड़ी या टोपी। कभी यहां कनटोप का प्रचलन भी था। धोती, कुर्ता का प्रयोग भी होता है। ऋतु के अनुसार वेश-भूषा भी बदल जाती है। ऊधमपुर की नारियों में सुत्थन चूड़ीदार पायजामा, और लम्बे खुले कुर्ते का खूब प्रचलन था। पुरानी पीढ़ी की नारियों में गिद्दी बांधने का प्रचलन अब भी है। कमीज और सलवार

का प्रचलन भी पर्याप्त है। ऊधमपुर सैनिक छावनी भी है। अतः भारत के प्रत्येक प्रांत के लोग यहां रहते हैं। जब वे अपने परिवारों के साथ अपने प्रान्तीय परिधान पहने बाजारों में घूमते हैं तब ऊधमपुर नगर एक सांस्कृतिक केन्द्र सा लगता है। किन्तु अब नई सभ्यता के प्रचलन से ऊधमपुर के निवासियों के परिधान में भी परिवर्तन आ गया है। पुरुष प्रायः पैंट-कमीज या पैंट-कोट पहनने लगे हैं और नारियों में साड़ी तथा कमीज-सलवार का प्रचलन बढ़ा है। ऊधमपुर के गुज्जरों और शनि के पुरोहितों ने अभी तक अपना परिधान नहीं बदला है।

आहार—ऊधमपुर वासियों का प्रिय आहार दूध, दही, पनीर, घी, मक्की की रोटी, गेहूं, चावल, दालें और सब्जियें हैं। ऊधमपुर के लोग राजमाश के बहुत ही शौकीन हैं। विवाह, मुंडन आदि शुभ अवसरों पर राजमाश मद्रा और काशीफल का अम्बल, विशेष रूप से परोसा जाता है। इस क्षेत्र के पर्वतीय अंचल में गुच्छियों का उत्पादन भी होता है। अतः गुच्छियों का पलाव, इस नगर का विशिष्ट आहार है। नगर में मांसाहारी लोग भी रहते हैं। उन का आहार पशु मांस, मछली तथा अंडा भी हैं। ऊधमपुर के बाजारों में अब दक्षिण का 'डोसा' भी बहुत बिकता है। लोग सरसों का साग और मक्की की रोटी भी बड़े चाव से खाते हैं।

नगर का नारी वर्ग—नगर की नारियां कश्मीरी ललनाओं की भांति कोमलांगिनी, मधुर भाषिणी, सुन्दर एवं गौर वर्ण की हैं। सतित्व भाव इनके चरित्र की विशेषता है। नगर की नारियों में आभूषण के प्रति विशेष लगाव है। यह विवाह इत्यादि अवसरों पर अपने बहुमूल्य आभूषणों का प्रदर्शन करती हैं। स्वभाव से धर्मभीरू हैं और इन का चरित्र अति उज्जवल है। नगर की महिलाओं में चरित्रगत त्रुटि यह है कि ये अब भी अन्ध-विश्वासों की जकड़ में बन्धी हुई हैं।

नैतिकता—नगर के लोगों के नैतिक चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता है—धार्मिक जीवन। नगर के प्रत्येक मुहल्ले में कोई न कोई मन्दिर अथवा देवी-देवता का स्थान है जिसके प्रांगण में बैठ कर नगर के लोग भजन गाते हैं या सत्संग करते हैं। ये लोग छल-कपट से कोसों दूर हैं। वचन बद्ध रहते हैं और प्रतिज्ञाओं का परिपालन करते हैं। अतिथि पूजन को धर्म मानते हैं। स्वभाव से बड़े कोमल, सरल एवं निष्कपट हैं। सहयोग की भावना इन में असाधारण है।

आर्थिक दशा—नगर की वर्तमान पीढ़ी आर्थिक दृष्टि से अति सम्पन्न लगती है। यहां के व्यापारी, दुकानदार तथा ठेकेदार बहुत ही समृद्ध तथा धनाढ्य हैं। इन लोगों के विशाल एवं भव्य भवन इन की समृद्धि के सूचक हैं। सैनिक छावनी होने के कारण भी नगर की आर्थिक दशा में बहुत सुधार हुआ है। किन्तु पच्चीस प्रतिशत लोग नगर में अब भी ऐसे हैं जो निर्धनता का जीवन

व्यतीत कर रहे हैं । निर्धनता की रेखा के नीचे जीवन व्यतीत करने वाली यहां केवल डुगडुगे नामक एक ही जाति है। सामूहिक रूप में नगर के लोगों की आर्थिक स्थिति सन्तोष जनक ही कही जा सकती है।

व्यवसाय—ऊधमपुर के नगर निवासियों का मुख्य व्यवसाय व्यापार ही कहा जा सकता है। नगर में ब्राह्मण, क्षत्रिय, महाजन आदि जातियों के लोग दुकान का काम पसंद करते हैं। कई नगरवासी ठेकेदार, कई ट्रांसपोर्ट कई वन व्यवसाय में भी लीन हैं। ऊधमपुर को पहाड़ी माल की मंडी कहा जाता है। देसी घी, अनारदाना, बनकशा, पहाड़ी आलू, पहाड़ी फल तथा राजमाश आदि ऊधमपुर की व्यापार मंडी में बिकने वाली विशेष वस्तुएं हैं।

नगर में कई लोग पारम्परिक कार्य यथा नाई, धोबी, चमार आदि जातियों के लोग अपने पैतृक व्यवसायों में ही कार्यरत हैं। लुहार, तरखान, सुनार आदि भी पैतृक व्यवसाय का काम कर रहे हैं। नगर में ऐसे लोगों की संख्या भी बीस प्रतिशत से कम नहीं जो सरकारी कार्यालयों में कार्यरत हैं। कई लोग सैनिक शिविरों में भी काम करने जाते हैं। किन्तु पिछले दशक में सुशिक्षित युवकों में बे-कारी भी बढ़ी है। कृषि कर्म करने वाले लोगों की संख्या गांव में पांच प्रतिशत से भी कम है।

उद्योग धन्धे—उद्योग धन्धों की दृष्टि से यह नगर बहुत ही पिछड़ा हुआ है। नगर में बड़े पैमाने या मध्य पैमाने की कोई फैक्टरी नहीं है। छोटे उद्योगों के रूप में फरनीचर बनाना, लोहे अथवा स्टील का सामान तैयार करना, ईंटें पकाना, मिट्टी के बर्तन बनाना, साबुन बनाना, तेल की मशीनें तथा छापेखानों की स्थापना आदि उल्लेखनीय हैं। वैसे इस क्षेत्र विशेष में फैक्टरी एक्ट के अन्तर्गत सौलह फैक्टरियों का पंजीकरण हो चुका है। उद्योग विभाग के अनुसार इन फैक्टरियों में ९५६ व्यक्ति कार्यरत हैं। खादी और ग्राम उद्योग की ओर से नगर में कई कार्य आरम्भ किये गये हैं। इस संस्था की ओर से शहद की मक्खियां पालने, खुबटियां उगाने, कपास कातने आदि का प्रशिक्षण दिया जाता है। इसी प्रकार लघु उद्योग विभाग की ओर से भी नगर में लघु-उद्योग की कई छोटी-छोटी इकाईयां स्थापित की जा चुकी हैं।

धार्मिक जीवन—युग परिवर्तन के साथ नगरवासियों के धार्मिक जीवन में भी परिवर्तन आया है। पहले नगर के कई लोगों का धार्मिक जीवन विशुद्ध आध्यात्मिक था किन्तु अब अधिकांश लोगों के धार्मिक जीवन में भौतिकवाद का आवरण चढ़ा हुआ है। लोग भौतिक सुखों की उपलब्धि के लिए देवपूजा करते हैं और प्रदर्शन के लिए यज्ञों, धार्मिक अनुष्ठानों तथा उत्सवों का आयोजन करते हैं। नगर में अधिकांश संख्या हिन्दुओं की है अतः हिन्दुओं में प्रचलित सभी मतों की शाखाएं इस नगर में स्थापित हैं।

सनातन धर्मी, आर्य समाजी, शैव और शाक्त भी रहते हैं तथा नये

सम्प्रदायों तथा राधा-स्वामी सत्संग, ईश्वरीय ब्रह्मकुमारी समाज की शाखाएं भी नगर में स्थापित की गई हैं। नगर में ईसाई धर्मावलम्बियों की विभिन्न शाखाओं के विभिन्न चर्च नगर में या नगर के निकटवर्ती क्षेत्र में स्थापित हैं। कई संस्थाएं नगर में सर्व धर्म सम्मेलनों का आयोजन भी करवाती हैं। किन्तु फिर भी लोगों में दिन-प्रतिदिन धार्मिक भावना में ह्रास ही आ रहा है।

शिक्षा केन्द्र—नगर स्थापना के बाद महाराजा रणबीर सिंह ने नगर के लोगों को सुशिक्षित करने के लिए देविका नदी के तट पर एक संस्कृत पाठशाला की स्थापना की थी। जिस में पच्चास के लगभग विद्यार्थी संस्कृत के विभिन्न विषयों में शिक्षा प्राप्त करते थे। यह पाठशाला १९४७ के बाद बंद हो गई। १९४७ से पूर्व राज्य सरकार की ओर से नगर में एक मिडल स्कूल खोला गया था। किन्तु स्वतन्त्रता के बाद नगर में शिक्षा के क्षेत्र में अति तीव्र गति से बढ़ोत्तरी हुई। इस समय नगर में दो सरकारी डिग्री कालेज, एक पुलिस कालेज, दो १०+२ स्कूल तथा दर्जनों हाई, मिडल तथा प्राइमरी स्कूल खोले गये हैं। कई स्वायत संस्थाओं की ओर से भी स्कूल खोले गये हैं जिनमें हजारों की संख्या में विद्यार्थी शिक्षारत हैं। ऊधमपुर नगर में शिक्षित व्यक्ति पैंसठ प्रतिशत हैं जबकि पूरे जिले में साक्षर लोग १९८१ की मतगणना के अनुसार २३.५२ प्रतिशत हैं।

सरकारी कार्यालय—जिला केन्द्र होने के कारण ऊधमपुर, नगर में सरकारी कार्यालयों की संख्या दर्जनों में है। यहां न्यायालय, शिक्षा, भूमि जल आपूर्ति, विद्युत, लोक निर्माण, चिकित्सालय, आयकर, बाढ़ नियंत्रण विभाग, डाकघर, पशु पालन, मछली पालन, ग्राम विकास, नगर विकास, वन विकास, उद्यान विकास, समाज सुधार आदि विभागों के कई कार्यालय हैं। जिनमें सैंकड़ों की संख्या में लोग कार्यरत हैं। भारत सरकार के भी कई विभाग नगर में स्थापित हैं। जिनमें कई विभागों का सम्बन्ध सेना से भी है। विभिन्न विभागों की संस्थापना से सरकार की ओर से कई विभागीय भवन बनाये गये हैं। जिससे नगर का सौंदर्य निखर उठा है।

देवस्थान—ऊधमपुर का विशेष महत्व यहां स्थित देवस्थानों के कारण है। ऊधमपुर के मुख्य देवस्थान देविका नदी है। देविका नदी एक पौराणिक नदी है और इस नदी की पहचान देश में स्थित कई अन्य नदियों से भी की जाती है। किन्तु स्थानीय लोगों का विश्वास है कि ऊधमपुर में प्रवाहित देविका नदी ही वास्तविक देविका है।

इस नदी का उल्लेख कई पुराणों में मिलता है। नीलमत पुराण में इस नदी के उद्‌भव और विकास की रोचक कथा वर्णित है। देवी माहात्म्य में लिखा है कि इस नदी के जल को स्पर्श करने मात्र से शरीर के पाप नष्ट हो जाते हैं। इस नदी के तट पर किसी जप, तप एवं यज्ञ की आवश्यकता नहीं, केवल एक

बार स्नान करने से ही मोक्ष प्राप्त होता है। ऊधमपुर में प्रवाहित देविका नदी को पूरे क्षेत्र के लोग एक तीर्थ स्थान के रूप में मान्यता प्रदान करते हैं। यहां प्रत्येक पर्व पर स्नानार्थ हज़ारों की संख्या में श्रद्धालु आते हैं और नदी पूजन भी करते हैं।

ऊधमपुर क्षेत्र के लोग शवों का अन्तिम संस्कार इसी नदी के तट पर करके अस्थियां भी इसी के जल में प्रवाहित कर देते हैं। वैज्ञानिक ढंग से देविका नदी के जल का परीक्षण अभी नहीं किया गया है। किन्तु लोग परम्परानुसार इस नदी का जल चर्म रोगों को नष्ट करता है।

कामेश्वर तीर्थ—ऊधमपुर की ख्याति का एक अन्य कारण देविका नदी पर स्थित कामेश्वर तीर्थ भी है। कामेश्वर तीर्थ की यात्रा भक्त ध्रुव ने भी की थी। अतः यह तीर्थ अति प्राचीन है। हिन्ताल राजाओं के समय में भी इस तीर्थ स्थान की विशेष व्यवस्था की जाती थी। कामेश्वर भगवान शंकर का ही एक नाम है अतः ऊधमपुर क्षेत्र में इस तीर्थ के निकट जो उपनगर बसा है, उसे शिवनगर के नाम से अभिहित किया जाता है। कामेश्वर तीर्थ में भगवान शिव के दो मन्दिर हैं। एक मन्दिर अति प्राचीन है और दूसरे बड़े मन्दिर का जीर्णोद्धार कई बार हुआ है। प्राचीन मन्दिर का शिवलिंग आकृति की दृष्टि से अन्य शिव लिंगों से भिन्न है। देविका नदी के तट पर अन्य पौराणिक देवी-देवताओं के और भी कई मन्दिर हैं।

ऊधमपुर नगर में भी गुरु रविदास जी का मन्दिर, विश्वकर्मा जी का मन्दिर, जैन मन्दिर, डंगे वाली माता जी का मन्दिर, रघुनाथ मन्दिर, शीतला माता का मन्दिर तथा हनुमान मन्दिर हैं। इन मन्दिरों के अतिरिक्त यहां एक और प्राचीन मन्दिर भी है जिसे 'पांडवों का मन्दिर' नाम से अभिहित किया जाता है।

नगर के मध्य भाग में एक सुन्दर गुरुद्वारा भी है। नगर के बाह्य भाग में कई सम्प्रदायों के चर्च हैं। नगर के भीतर मस्जिदें और कई पीरों, सिद्धों और फकीरों के स्थान हैं।

कलाएं—नगर में विभिन्न कलाओं के रूप उपलब्ध हैं जिनके अनुशीलन से पता चलता है कि इस नगर के लोगों की कलाओं में विशेष रुचि रही है। ऊधमपुर में कलाओं के निम्न रूप उपलब्ध हैं :—

स्थापत्य कला—ऊधमपुर में स्थापत्य कला के अद्‌भुत नमूने देविका नदी के तट पर बिखरे अवशेष हैं। ये अवशेष विश्रामालयों के लगते हैं। इन खंडित तथा ध्वंस विश्रामालयों का अवलोकन करके ऐसा लगता है मानो यहां के वास्तुकार प्रस्तर को साकार रूप देना जानते थे। ये विश्रामालय पत्थर शिलाओं से निर्मित हैं और इन पर सुन्दर तक्षण कला का कार्य हुआ है। इस प्रकार के सुन्दर प्राचीन भवन डुग्गर क्षेत्र में ऊधमपुर के अतिरिक्त अन्य किसी स्थान पर

नहीं मिलते। स्थापत्य कला का अद्वितीय नमूना कामेश्वर तीर्थ में स्थित प्राचीन शिव मन्दिरों भी है जो शिलापटों को जोड़ कर बनाया गया है। इस मन्दिर की बनावट डुग्गर में उपलब्ध अन्य मन्दिरों से भिन्न है। इस प्रकार कामेश्वर तीर्थ के प्रांगण में स्थित प्राचीन बुर्ज भी वास्तुकला के सुन्दर उदाहरण हैं।

मूर्तिकला—ऊधमपुर में मूर्तिकला के नमूने ऊधमपुर की बावलियों में उपलब्ध हैं। प्रत्येक बावली दर्जनों सुन्दर प्रस्तर मूर्तियों से सुसज्जित है। ये मूर्तियां स्थानीय लोक कलाकारों द्वारा बड़े श्रम तथा श्रद्धा से निर्मित की गई हैं। ये मूर्तियां पौराणिक देवी-देवताओं की हैं। कई बावलियों में लोक देवताओं और लोक-देवियों की मूर्तियां उपलब्ध हैं। देविका नदी के तट पर स्थित बावलियों की अपेक्षा बाड़ेआं स्थित बावलियों की मूर्तियां अति कलात्मक तथा सुन्दर हैं। बिल्लन बाईं और पटन बड़ की बावलियों में मंडित मूर्तियां भी अति सुन्दर हैं। ऊधमपुर की बावलियों में मंडित मूर्तियों का अनुशीलन करने से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि स्थानीय कलाकारों को तक्षण कला का असाधारण एवं अद्वितीय ज्ञान था।

संगीतकला—ऊधमपुर अपनी संगीतकला के लिए भी प्रसिद्ध है। यहां शास्त्रीय एवं लोक संगीत दोनों को प्रश्रय मिला है। शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में रूपचन्द और नाथ राम पाधा ने पर्याप्त ख्याति अर्जित की है। लोक संगीत के क्षेत्र में कारक, बार, भाख, तरोड़क, बिसनपते, बिहाइयां, सुहाग, घोड़ियां तथा झंझोटी का विशेष प्रचलन है।

नाट्यकला—ऊधमपुर निवासियों की नाट्यकला में भी विशेष रुचि है। डुग्गर क्षेत्र में ऊधमपुर ही एक ऐसा नगर है जिसका अपना रंगमंच है। राम-कला केन्द्र के तत्वावधान में ऊधमपुर में कई नाटकों का मंचन बड़ी सफलता से किया गया है। इस संस्था के अतिरिक्त अन्य और भी छोटी-मोटी संस्थाएं इस क्षेत्र में कार्यरत हैं।

नृत्यकला—ऊधमपुर के लोग नृत्य कला में भी बड़े दक्ष हैं। भांगड़ा, फुम्मनी, कुड्ड तथा गगैह्ल नृत्यों में लोगों की विशेष रुचि है। नारियों में जागरना नृत्य प्रचलित है। अब नगर में पश्चिमी संगीत की धुनें और नृत्य भी सुना और देखा जा सकता है।

साहित्य साधना—साहित्य के क्षेत्र में भी इस नगर के निवासियों ने विशेष रुचि दिखाई है। नगर की स्थापना के बाद जो लोग यहां आए उन में कई कवि और कलाकार भी थे। प्रो० संसार चन्द गुप्ता के मतानुसार ऊधमपुर का आदि कवि दत्त चौधरी था जिसने १८६५ के लगभग डोगरी और उर्दू में कुछ पद्यबद्ध पंक्तियां कही थीं। किन्तु अब उन का एक भी पद उपलब्ध नहीं है। १९४० ई० में ऊधमपुर में 'शेख बरकत' नामक एक उर्दू शायर उभरे। उनकी गज़लों ने पूरे शहर में धूम मचा दी। १९४७ ई० में वे पाकिस्तान चले गये। स्वतंत्रता

के बाद ऊधमपुर के साहित्यकारों ने बज़म-ए-अदब नामक संस्था स्थापित की। १९८५ में नगर में सभी भाषाओं के लेखकों ने मिलकर साहित्य संगम नामक संस्था का संगठन किया।

पत्रकारिता—पत्रकारिता के क्षेत्र में भी ऊधमपुर नगर पीछे नहीं है। डिग्री कालेज ऊधमपुर की ओर से 'देविका' नामक पत्रिका तथा हायर सैकेन्ड्री स्कूल की ओर से 'वेणी लहर' का प्रकाशन किया गया है। इसके अतिरिक्त 'रहनुमा-ए-कौम' साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन कृष्ण गुप्ता ने 'ज़ेवरे तालीम' का सम्पादन तारामणि दुबे ने और 'सुबह का शगूफा' का सम्पादन शिवलाल मगोत्रा ने किया। बलराज कुमार ने 'वकार' का तथा भारत भूषण ने अंग्रेज़ी साप्ताहिक 'शान-ए-कश्मीर' का सम्पादन किया। इनमें कई पत्र और पत्रिकाएं अब भी निकल रही हैं।

लोक-साहित्य—लोक-साहित्य की दृष्टि से यह क्षेत्र अति समृद्ध है। प्रत्येक लोकोत्सव, लोक पर्व एवं लोक अनुष्ठान के अवसर पर लोक-गीतों की धुनें नगर में गूंजती रहती हैं। इस नगर के वृद्ध स्थानीय दन्त कथाओं, लोक-कथाओं, परिकथाओं तथा मनोरंजक कथाओं का रसास्वादन नई पीढ़ी को भी करवाते हैं।

लोक-साहित्य में ऊधमपुर से संबंधित भी कई लोक-गीत उपलब्ध हैं जिनमें ऊधमपुर का लोक-मानस अभिव्यक्त हुआ है। यथा—

ऊधमपुरै दियां ढक्कियां
लेई घड़ोला गोरी पानियै गी चलियै
तेरे सो, चली-चली अऊं थक्कियां
पिपलै दा बूटा ढक्की पर सोहै
बौलियां बनी गेइयां पक्कियां।

डोगरी लोक-साहित्य की अन्य विधाओं यथा लोक-नाट्य, लोक-कहानी, लोक-गाथा, बुझारतों आदि का पर्याप्त रूप इस नगर में अब भी सुरक्षित है।

लोक पर्व और लोकोत्सव—नगर में हिन्दुओं, मुसलमानों, ईसाइयों, सिक्खों के धार्मिक उत्सव तो डुग्गर के अन्य क्षेत्रों की भांति आयोजित होते ही हैं। किन्तु स्थानीय लोकोत्सव दो ही हैं जिनमें सभी धर्मों और सम्प्रदायों के लोग बड़ी संख्या में भाग लेते हैं। इन लोकोत्सवों में प्रथम उत्सव वैसाखी का है। इस उत्सव का आयोजन देविका नदी के तट पर होता है और तीन दिन तक चलता रहता है। इस उत्सव में भाग लेने के लिए पर्वतीय एवं ग्राम अंचलों से हजारों की संख्या में लोग भाग लेते हैं। इस अवसर पर पशु प्रदर्शनी भी आयोजित होती है। गुग्गा नवमी का त्योहार नगर की कुछेक जातियां ही मनाती हैं। वे इस अवसर पर गुगैह्ल नृत्य का आयोजन करती हैं और कई बार गुग्गा की झांकी भी निकाली जाती है।

नगर की विशिष्टताएं—लोक परम्परानुसार ऊधमपुर की पांच विशिष्ट विशेषताएं हैं जो लोक-भाषा में इन शब्दों में कही जाती हैं। 'बड़, बोढ़, बौह्‌ली ब्हाऽ ते बाके।' पीपल, बोहड़, बावलियां, हवा और झूठी अफवाहें नगर की विशेषताएं हैं। यह सही है कि नगर में दर्जनों की संख्या में पीपल तथा बोहड़ के वृक्ष हैं। यहां दो दर्जन से भी अधिक बावलियां हैं। यहां हवा बहुत चलती है। यह हवा सर्दियों में लोगों का जीना दूभर कर देती है। यहां के लोग झूठी अफवाहें बहुत फैलाते हैं। जिन्हें अब 'दब्बड़ समाचार' नाम से अभिहित किया जाने लगा है। □



भद्रवाह : एक सांस्कृतिक सर्वेक्षण

□ डॉ० प्रियतम कृष्ण कौल

विगत समय में भद्रवाह एक छोटा राज्य भी रहा है, एक भौगोलिक इकाई भी और एक सांस्कृतिक पहचान भी ।

भौगोलिक रूप से भद्रवाह, दो छोटी नदियों द्वारा निःसृत घाटियों का संयुक्त नाम रहा है जिसके अन्तर्गत भलेश, भद्रावकाश (भद्रवाह) और कैलाड़ क्षेत्र आते हैं ।

''भलेश' का क्षेत्र कालीनाई और केहर गड़ नदियों द्वारा निःसृत दो छोटी घाटियों का सिलसिला है । ''कालीनाई'' की छोटी नदी 'कालीनाग' चश्मे से निकल कर ''बोनजवा'' की घाटी में से बहती हुई आगे बढ़ती है। जबकि कहर मचा देने वाली (बाढ़ के दिनों में), 'कहर गड़', 'सुनबांई' की उत्तरी ढलानों से निकलकर, किलहोत्राण जकयास और गन्दोह से होते हुए, ठाठरी से थोड़ा ऊपर, काली नाई में मिल जाती है । आगे बढ़ कर यही संयुक्त नदी 'काली नाई' के नाम से, तंग चट्टानों में से होकर ठाठरी के पास चन्द्रभागा में विलीन हो जाती है । काली नाई नदी का पानी आज भी कितना काला अर्थात् नीलिमा युक्त स्वच्छ और साफ है—सारी भलेस की घाटी में से गुजर आने के बाद भी कितना पवित्र और ठंडा है, ठाठरी के पास, यह देखते ही बनता है। भलेंश के रहने वालों को ''भाल'' कहते रहे हैं । ''भालों'' के इस देश को ही भलेंश या भलेस कहते हैं । इस क्षेत्र का नाम भलेंश इस कारण भी हो सकता है कि भद्रवाह के प्रसिद्ध प्रथम राजा नागपाल की माता जिस का नाम ''भालो'' था इसी क्षेत्र से संबंधित थी ।

भद्रवाह या (भद्रवकाश), नीरू नदी द्वारा निःसृत घाटी का नाम है । नीरू 'सुनबाई' पर्वत से निकलकर डोडा के पास, चन्द्रभागा नदी में समाविष्ट हो जाती है। ''भाला'' ग्राम के पास इस में दाहिनी ओर से आकर ''बिनगड'' नदी

मिलती है। "विनगड" नदी द्वारा निसृत घाटी का नाम ही "कैलाड़" है। इस प्रकार कैलाड़, भद्रवाह और भलेंश घाटियां मिलकर भद्रवाह राज्य के अन्तर्गत रही हैं। भद्रवाह शब्द भद्रावकाश से ही बिगड़ कर बना है।[1]

ऐतिहासिक दृष्टि से भद्रवाह एक ऐसी इकाई रहा है जिस का उल्लेख हमें ग्यारहवीं शताब्दी से लेकर अब तक, मिल रहा है। आन्तरिक और बाहरी साक्ष्यों से इस का उल्लेख, इस छोटे से राज्य के सामन्तों का उल्लेख, इस छोटे से राज्य का पड़ोसी चम्बा और बिलावर के राज्यों से संबंध तथा इस क्षेत्र से संबन्धित उल्लेखनीय घटनाओं का विवरण हमें निरन्तर मिलता है।

भद्रवाह का राज्य पहले ऊधानगर और डूंगा नगर के स्थान पर था। यह दोनों ग्राम सरतिंगल और मोडां के नाम से मशहूर हैं, और नीरू तथा हलोना नदियों के संगम स्थान पर स्थित हैं। इन्हीं दो ग्रामों से होकर के, भद्रवाह—बसोहली, और भद्रवाह चम्बा के पैदल रास्ते जाया करते थे।

ग्यारहवीं शताब्दी की अन्तिम चौथाई में राजा नागपाल ने भद्रवाह पर अपना आधिपत्य स्थापित किया और चम्बा से कुछ ब्राह्मण पुरोहितों को लाकर यहां आबाद किया और उन्हें बहुत-सी ज़मीन दान में दी। तब से लेकर १८४६ ई० तक इस वंश के अनेक राजाओं ने इस क्षेत्र पर राज्य किया। इन में से नागपाल, ध्रुवपाल और चढ़त सिंह का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। १८४६ ई० में गुलाब सिंह ने जान लारेन्स के माध्यम से, जो समझौता ब्रिटिश सरकार से किया, उसके द्वारा भद्रवाह भी जम्मू काश्मीर राज्य का एक अभिन्न अंग बन गया। और तभी से यह ऐसा ही रह कर आज भारत का एक अभिन्न अंग बना हुआ है।

भद्रवाह के इस लम्बे इतिहास में कुछ घटनाएं महत्वपूर्ण हैं—

(i) भद्रवाह राज्य की स्थापना नागपाल (प्रथम) द्वारा हुई।

(ii) और नागपाल (द्वितीय) ही भद्रवाह का अन्तिम पाल राजा हुआ।

(iii) इसी राजा ने, अकबर के समय में, अपने आध्यात्मिक बल से उसे, अपने इष्ट देव वासुकीनाग के चमत्कार से प्रभावित किया, उस पर आध्यात्मिक विजय प्राप्त की, और अपने देव के लिए बहुत से आभूषण और वस्त्रों का उपहार प्राप्त किया। इस घटना की याद में इस स्थान पर मेला पट (रेशमी वस्त्रों का मेला) आज भी मनाया जाता है।

---

1. The name is derived from BHADRAVAKASA meaning "beautiful spot" The syllable KA has been droped in "Apabharansha" for certain versions. I have heard the syllable VA is droped and the name is pronounced as BHADRAKAH. The last H is necessary as it is Aprabhansha for last syllable SH or 's.........State Archives—R.C. Kak. F/129/1934.

(iv) राजा धीपाल ने गाष्टा ग्राम में वासुकी नाग के मन्दिर की स्थापना की जिसका पुन: उद्धार १९वीं शताब्दी में किया गया।

(v) १८४५ ई० के आसपास शक्ति सिंह कोतवाल ने जम्मू के शासकों की सहायता से चम्बा के अन्तिम शासनाधिकारी प्यार सिंह को मार कर, भद्रवाह में विद्रोह किया और चम्बा वालों को पद्दरी गली में रोक परास्त किया। शक्ति सिंह को इस बहादुरी के लिए चोबिया में जागीर दी गई।

वैसे तो सारा भद्रवाह ही नहीं, विगत समय में सारा डोडा मंडल सांस्कृतिक धरोहर का एक खज़ाना रहा है, पर भद्रवाह क्षेत्र ने अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाई है।

भद्रवाह के क्षेत्र में आपको छोटे बड़े सैकड़ों मन्दिर और देवालय देखने को मिलेंगे। इन देवालयों की कुछ निजी विशेषताएं हैं।

(i) कुछ देवालय नगर अथवा गांव से बाहर किसी बनी (वन स्थली), देवदारू के वृक्षों से घिरी कुछ समतल-सी स्थली पर बने मिलते हैं, जहां गांव के लोग हर वर्ष अपने विशिष्ट "त्योहार" या "जातर" पर इकट्ठे होकर खूब आनन्द मनाते रहे हैं, दिन भर या रात भर जागरण करते रहे हैं, गाते रहे हैं, नाचते रहे हैं और जहां पहाड़ी मेले की सभी रंगीनियां देखने को मिलती रही हैं। सिबारधार, डेरका (कैलाड़), भेजा ग्राम (भद्रवाह तथा भलेस) के देवालय कुछ-कुछ इसी तरह के हैं।

(ii) कुछ देवालय (इसी तरह की बनस्थली पर) ऊंची पहाड़ी चोटियों पर बने हैं जहां पहाड़ी लोग अपनी श्रद्धा-भक्ति से प्रेरित होकर, कोई छिल्लू या भेड़ा लेकर यात्रा पर जाते हैं—किसी मनोरथ के होने पर, अथवा उस से पहले भी—और फिर वहीं उस पशु बलि के उपरान्त उसके मांस से खूब आनन्द मनाते हैं।

(iii) ऐसे देवालयों में पूजा अर्चना दैनिक रूप से, या नियमित रूप से नहीं होती।

(iv) यह मन्दिर प्राय: बहुत छोटे आकार के हैं और बड़ी कठिनाई से एक या दो व्यक्ति इनके पूजा कक्ष में समा सकते हैं।

(v) दूसरी तरह के मन्दिर जो गांव के भीतर या कस्बे में बने मिलते हैं, आकार में अपेक्षाकृत बड़े हैं। कुछ अधिक भव्य और सुन्दर हैं।

(vi) इन सभी देवालयों में राम, कृष्ण, शिव, विष्णु इत्यादि प्रतिष्ठित देवताओं की पूजा अर्चना न होकर, क्षेत्रीय लोक देवों या देवियों की प्रतिष्ठा की गई है। यथा अनेक नामों से जाने जाने वाले नागदेव

वासक नाग, काली नाग, महल नाग, सबार नाग, छेछ नाग, बेरी नाग इत्यादि ; अनेक नाम से जानी जाने वाली देवियां यथा—चान्दर वाली देवी, चौंड देवी, रध्यूशर देवी, भद्रकाली देवी, सीतला देवी इत्यादि ; तथा बहुत से लोक देवों—महापतम देव, के देवालय, देखने को मिलते हैं।

(vii) वास्तुकला की दृष्टि से भी इन देवालयों की कुछ अपनी विशिष्टताएं हैं। यह सभी पूर्ण रूप से काष्ठ से बने हैं और इस दृष्टि से इन्हें चम्बा के काष्ठ मन्दिरों की श्रेणी में रखा जा सकता है। चारों कोणों के स्तंभ, नीचे और ऊपर (छत्त) के स्तून, दीवारें और सभी कुछ, यहां तक कि एक आध मन्दिर में मूर्ति भी काठ की ही बनी है। परन्तु यह सिलसिला १८वीं शती तक बने मन्दिरों तक ही सीमित रहा, जो मन्दिर १९वीं शताब्दी में बनाए गए हैं उन में पत्थर और चूने का प्रयोग भी हुआ है।

भद्रवाह में अनेक तरह के पर्वों और त्योहारों का आयोजन होता रहा है। इन में से कुछ धार्मिक रहे हैं तथा कुछ सामाजिक। धार्मिक रूप से मनाए जाने वाले पर्वों और त्योहारों में अधिकांश का संबंध 'शिव' अथवा गांव के प्रतिष्ठित नागदेव से रहता है।

भगवान शिव, पर्वतीय जनमानस के सब से अधिक प्रिय लोक देव रहे हैं। पर्वतीय जन उन्हें धूड़ू तथा शामी के नाम से ही जानते हैं। शामी इस कारण कि वह सभी पापों और शापों का शमन कर सकते हैं और धूड़ू इस कारण कि उनका शरीर धूल से सुशोभित है। इन्हीं शिव से सम्बन्धित जो अनेक त्योहार भद्रवाह की ग्रामीण जनता में प्रचलित रहे हैं, उन में से प्याला, नवाला, खडाह, गुस्सेतन, घणचक्र तथा शंखढाल विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन में से कुछ का प्रचलन डुग्गर में भी रहा है।

प्याला, नवाला इत्यादि इन त्योहारों पर दिन भर और रात भर शिव-पूजा की जाती है और शिव महिमा के लोक गीत, जिन्हे "एंजलियां" कहते हैं गाए जाते हैं। यह त्योहार किसी व्यक्ति विशेष के घर पर ही मनाए जाते हैं। नाग संबंधी त्योहारों में 'कैलाश यात्रा', 'मनमहेश यात्रा' और भेज्जा ग्राम में नाग संबंधी कुड्ढ विशेष रूप से चर्चित रहा है। भेज्जा ग्राम (भलेस) के कुड्ढ (रात्रि जागरण, Camp fire तथा नाच इत्यादि) में नाग चेले द्वारा जलती आग पर नंगे पांव चलना इस कुड्ढ का मुख्य आकर्षण रहा है।

सामाजिक उत्सवों में—जो प्रायः भाद्रपद मास में फसलों की रूपाई और निदाई के उपरान्त मनाए जाते हैं, विशेष रूप से 'कोड्डों' का उल्लेख किया जा सकता है। यह 'कोड' किसी वनस्थली (वणी) अथवा नाग (चश्मे) के पास

मनाए जाते हैं जहां किसी विशिष्ट दिन पर दूर और पास के गांव से लोक इकट्ठे होकर हर्ष और उल्लास का सामूहिक आयोजन करते हैं। नृत्य होता है जिसे ''कुड्ढ'' नृत्य कहते हैं।

भद्रवाह के लोगों का आर्थिक पक्ष कृषि तथा पशु पालन से ही सम्बन्धित रहा है। यह लोग पहाड़ों की ढलानों पर उपलब्ध धरती, जिसके आस पास देवदास के वृक्ष तथा कोई नाग चश्मा अथवा छोटी नदी बहती, कृषि करते थे। पास का जंगल, इन्हें सर्दी से बचाने के लिए आवश्यक लकड़ी उपलब्ध कराता, लड़ाई के दिनों में छिपने के लिए उपयुक्त ठौर उपलब्ध कराता, और उत्कृष्ट तथा स्वाद से परिपूर्ण फल सब्जियां और औषधियां भी प्रदान करता। चश्मे से जल उपलब्ध हो जाता। धरती पर यह मक्का, धान, दलहन और तिलहन की कृषि करते और पास की जंगली ढलानों और ऊंची पर्वतीय अधवारों पर गाए भेड़ चराकर इन्हें दूध, घी, मक्खन और ऊन उपलब्ध हो जाती। भद्रवाह क्षेत्र ऊन और घी के लिए प्रसिद्ध रहा है। यहां का घी बसोहली के रास्ते पंजाव तक निर्यात होता रहा और यहां के लोगों को धन उपलब्ध कराता रहा। बनिहाल तांगा रोड़ (cart road) बन जाने पर यही घी जम्मू की मंडी में पहुँच कर नाम कमाता रहा। भेड़ें अधिक पाले जाने के कारण ऊन की भी बहुत उपज होती रही और इसी कारण यहां कम्बल बनाने का बड़ा प्रचलन रहा। 'बुनये' बाहर से आकर यहां बस गए और यहां से कम्बल बाहर निर्यात होने लगे। भद्रवाह के कम्बल अपनी गरमाईश और रंगों के लिए आज भी प्रसिद्ध हैं। इस के अतिरिक्त जंगल से जड़ी बूटियों की सौगात (बनफशा-धूप-जंगली थोम, कुठ, गुछियां इत्यादि) को इकट्ठा करना और निर्यात करना इस क्षेत्र के लोगों का मुख्य धन्धा रहा है।

भद्रवाह के लोग कड़ा श्रम करने वाले और जीवन का भरपूर आनन्द लेने वाले रहे हैं। उन के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से इस कथन की पुष्टि होती है। एक गीत में कहा गया है—

''हम रस्सी और किल्लड़ में ठाठ (जलाने की लकड़ी) दूर जंगल से उठा लाते हैं। हम घास की जूती पहनते हैं पर पर्वत की ऊंचाइयों से घबराते नहीं, हम भद्रवाहियों को शाबाश है।''

शैलेईं किलड़ेइं काठ धिरातम।
शाबश असन मिड्लग्इन जोई।

इसी कड़े श्रम ने उन्हें हृष्ट पुष्ट शरीर और अच्छी सूझ-बूझ प्रदान की है।

भद्रवाह के ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक और व्यावसायिक पक्ष की तरह ही यहां का सांस्कृतिक पक्ष भी बड़ा समृद्ध रहा है।

भद्रवाही इस क्षेत्र की बोली है जो बड़ी ही समृद्ध है। इस में कुछ ऐसे शब्द और ध्वनियां मिलती हैं जिन का संबंध डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा के अनुसार

केवल वेदों से है। इस बोली का संबंध सीधा गुजराती और संस्कृत से रहा है, इस बात की पुष्टि इस तथ्य से होती है कि भारत की सभी भाषाओं बोलियों में से, केवल गुजराती और भद्रवाही ही ऐसी हैं जिन में संस्कृत के नपुंसक लिंग के अवशेष आज भी देखने को मिलते हैं।

भद्रवाही भाषा में हमें प्रचुर लोक साहित्य की उपलब्धि होती है। लोक गीतों, लोक कथाओं, लोक विश्वासों, आस्थाओं, लोकोक्तियों, मुहावरों, पहेलियों रीति-रिवाज़ों का एक विशाल भण्डार हमें यहां से उपलब्ध होता है। यहां के लोक गीतों की कुछ अपनी विशेषताएं हैं। 'एंजली" भद्रवाह का भक्ति गान है जिस में शिव अथवा नाग प्रशस्ति देखने को मिलती है। किन्हीं महापुरुषों का यशोगान भी लोक रूप में वर्णित होकर मुखरित हुआ है। एक छोटी-सी एंजली का भद्रवाही रूप देखिए—

राम त लक्ष्मण, घुलना[1] त लाए हो
पवन ता पानी भाइयों झुलना[2] त लाए हो
धरती अकाश भाइयों डुलना[3] त लाए हो
पखु त पखेरू भाइयों सब करलाए हो।

आखिर दो बीर और योद्धा कुश्ती लड़ने लग जाएं तो आम लोग सहम क्यों न जाएं, कांप क्यों न उठें, उन्हें क्या खबर कि ऐसा केवल मनोरंजन के लिए हो रहा है। वस्तुतः वह तो परस्पर अटूट स्नेह बांटने वाले दो भाई हैं।

यह एंजलियां शिव सम्बंधी अनुष्ठानों, पर्वों और त्योहारों पर भी गाई जाती हैं।

भद्रवाही लोक गीतों का दूसरा वर्ग 'सुकली' या 'घाती' कहा जाता है सुकली को अगर हुकली कहें तो गलत न होगा क्यों कि इन गीतों का मुख्य वर्ण्य विषय हूक अर्थात् दर्द और वेदना है। इन गीतों में मानव मन के विरह का सन्ताप, असफल प्रेम की पीड़ा, अथवा चिर वियोग का सालने वाला कलेश वर्णित हुआ है। पर कभी-कभी युवा प्रेम की लुका-छिपी भी इस प्रेम में वर्णित होकर मुखरित हुई है। घाती या सुकली एक तरह से पंजाबी माहिया गीतों से मिलता जुलता है जहां प्रेमी प्रेमिका अपने प्रेमावेगों को प्रेमालापों, छेड़छाड़ और उत्तर प्रति उत्तर के रूप में गाते हुए प्रस्तुत करते हैं। दो पंक्तियों और चार चरणों वाली सुकली जब पहाड़ी ढलानों और ऊंची पर्वतीय चरागाहों पर, गाए भेड़ चराते समय, ऊंची धुन में गाई और सुनी जाती है तब उसकी मिठास सारे वातावरण में घुल जाती है।

'घुरेई' भद्रवाही गीतों का वह रूप है जिस में स्त्रियां, किसी सामाजिक उत्सव पर सामूहिक रूप से नाचते हुए, इसे गाती हैं। घुरेई गीतों के बोल बड़े मार्मिक होते हैं।

---

१. कुश्ती लड़ना २. तेजी से चलना ३. नीचे गिर आना।

भद्रवाही कृषि गीत और श्रम गीत भी बड़े प्रभावोत्पादक हैं। कृषि गीतों में रोपनी, निदाई और कटाई के गीत बड़े रोचक हैं। इन में क्षेत्र के लोक जीवन का चित्रण और लोक मानस की उड़ान का चित्रण देखने को मिलता है। संगीतात्मकता ऐसे गीतों की जान है। ऐसे ही एक गीत का यह बोल देखिए—

डोले होले डोहो लिए। डोले होले डोहोलियों ।
रामां केरे बेले जुआ ! सोन्नेरी हल जूए नां !
डोले होले डोहोलिए......रामां केरे बेले जूआ ! सायी खार निस्से नां !
डोले होले डोहोलिए......चिन्ते त चोविए मेरे धानोले पक्के नां।

[राम राज्य के समय में हल और जूआ सोने का रहा करता था। राम के समय में हे मित्रो मेहनत करने पर खार खार (८०० किलो) धान पैदा होता था। देखो साथियो चिन्ता और चोविया गांव में अव धान पक ही गया है।]

श्रम गीतों का भी अपना ही आर्कषण है और सामूहिक रूप से इन्हें गाकर पहाड़ी लोग थकान महसूस नहीं करते।

भद्रवाही नृत्य गीतों का कुछ अपना ही आकर्षण रहा है। जंगलात के उद्योगों से संवंधित रहने के कारण, इस क्षेत्र के निवासी दिन भर के श्रम से राहत पाने के लिए, रात में 'कुड्ढ' (Camp fire) का आयोजन कर के, देर रात तक नृत्य और गान का आस्वादन करते हैं। १०-२० व्यक्ति एक वृत्ताकार में बैठ कर गाते जाते, और वृत्त के बीच में आकर कोई मनचला व्यक्ति थिरक-थिरक कर नाचता और सब को आनन्दित करता है। ऐसे गीत इस क्षेत्र में बड़े लोक प्रिय रहे हैं।

शिशु गीतों में भद्रवाही लोरी कुछ कम मोठी नहीं। ज़रा देखिए—

नीनेड़ी आई मठा, नीनीड़ी आई हो ! टेक
नीनेड़ो बाबो मठा घरे जोगी आव हो !
एच्चे बच्चा, ऐज्जे कोआ नीनाड़ी आई हो !
इत्यादि

[रे बेटे ! देखो निंदिया आ रही है निंदिया आ रही है। (रात हो चली) और निंदिया का बावा भी घर को पधार रहा है। रे बेटे ! अब नींद को आ ही लेने दो, आ ही लेने दो।]

इस प्रकार हम देखते हैं कि भद्रवाह क्षेत्र का लोक जीवन सर्वांगीण तया परिपूर्ण भी है। □

कठूआ नगर : एक अध्ययन

□ मनसाराम शर्मा 'चंचल'

यदि हम पुराने राजस्व विभाग के रिकार्ड को देखें तो कठूआ नाम का कोई नगर यहां मौजूद न था। अलबत्ता यहां पांच गांव थे, जिन्हें बंडें कहा जाता था। इन बंडों के नाम आज भी मुहल्लों के साथ जुड़े हैं। जैसे कि मंझली बंड, पारली बंड आदि। इसी प्रकार वह क्षेत्र, जहां आजकल मेन बाज़ार, सरकारी दफ्तर, अस्पताल आदि हैं, इसका नाम तज्जीवाल था और भजोवाल नामक मुहल्ला अपने नाम को लिए इस शहर का एक अंग है।

इन पांच गांवों या बंडों का इकट्ठा करके हमें एक कस्बे और ज़िला हैड-क्वार्टर का दर्जा देने का श्रेय वास्तव में राज्य के प्रथम मुरब्बा-बंदी कमीश्नर श्री वालटर लारेंस को जाता है, जिन्होंने इन पांच गांवों को इकट्ठा ही नहीं किया, अपितु हमें जम्मू व पठानकोट से सड़क द्वारा मिलाए जाने, इसे ज़िला हैड-क्वार्टर का दर्जा देने और यहां कई एक कार्यालय खोल कर इस क्षेत्र को विकसित करने की सिफारिश राज्य सरकार को दी, जिसे सरकार ने मान लिया।

इससे पूर्व इस ज़िले का नाम जसरोटा था और उसका हैडक्वार्टर जसमेरगढ़ किला (हीरानगर) में हुआ करता था और यह एक तहसील ही थी।

इसी प्रकार इस नगर के नाम-करण की पृष्ठभूमि बड़ी दिलचस्प है। उपरोक्त पांच गांवों को एकत्र करते समय प्रश्न यह पैदा हुआ कि इसका नाम क्या रखा जाए। हर गांव वाले इस बात पर अड़े थे कि इस नगर को उनकी बंड का नाम दिया जाए। आखिर निर्णय यह हुआ कि हम इस क्षेत्र के पांच गांवों को United के हिन्दी अनुवाद के अनुसार "कट्ठ-हुआ" किया जाए जो बाद में 'कठुआ' बन गया।

इस नगर के नामकरण को कठ राजपूतों की राजधानी होने से सम्बन्धित किया जाता है और कुछ दूसरे लोग कुछ और पृष्ठभूमि बताते हैं, जोकि किसी भी कसौटी पर ठीक नहीं उतरती, क्योंकि यहां पर कोई भी ऐतिहासिक महत्त्व का ऐसा स्थान नहीं है जो कि प्रमाण रूप में पेश किया जा सके और न ही उन लोगों के वंशज यहां पर हैं। फिर इन साधारण गांवों को राजधानी बनाने का प्रश्न ही नहीं उठता था।

मुझे, इस बारे में प्रथम मुरब्बा-बंदी कमिश्नर की रिपोर्ट के अवलोकन का सौभाग्य भी मिला है, जिसमें इसे कस्बे के तौर पर विकसित करने, इसे ज़िला हैडक्वार्टर का दर्जा देने, इसे सड़क द्वारा जम्मू व पठानकोट से मिलाए जाने और यहां सरकारी कार्यालयों और अधिकारियों के निवास के लिए भवन बनाने के सुझाव दिए गए थे।

इस प्रकार पांच गांवों का समूह आज कठूआ नगर के नाम से अस्तित्व में आया है, और विस्तार एवं जनसंख्या के आधार पर इसे जम्मू प्रदेश में द्वितीय स्थान प्राप्त है। आज यहां ज़िला कार्यालय, कालेज, कई स्कूल, ज़िला अस्पताल रेलवे स्टेशन एवं अन्य महत्त्वपूर्ण संस्थान हैं। यह राज्य के सिंहद्वार का भी काम करता है एवं पंजाब के अधिक निकट व रेल व राष्ट्रीय मार्ग से जुड़ा होने के कारण यहां औद्योगिक-विकास विशेष रूप से हुआ है। यहां बड़े व छोटे स्तर के कई औद्योगिक संस्थान हैं। इसलिए रोज़गार के लिए बाहिर से आने वाले लोग भी काफी संख्यां में अस्थायी रूप से यहां आ गए हैं।

सन् १९८१ की जनगणना के अनुसार यहां की जनसंख्या केवल ३०१७१ थी, जिनमें १६००२ पुरुष व १४१६९ महिलाएं थीं। आज यह एक अनुमान के अनुसार लगभग दो गुणी हो चुकी है। इसका एक कारण उद्योग हैं, लेकिन सबसे बड़ा कारण गांवों से शहरों की ओर जाने का रुझान है। आज यह नगर एक ओर जम्मू पठानकोट सड़क को पार करके रेलवे-स्टेशन को छूने जा रहा है तो दूसरी ओर पश्चिम में नाले से लेकर पूर्व पुराने कस्टम हाऊस से भी आगे बढ़ गया है। नगर विकास का क्रम बड़ी तेज़ी से आगे बढ़ रहा है।

कठूआ का नगरीकरण होने के बावजूद यहां के अधिकांश लोगों के धन्धे खेती बाड़ी, व्यापार या उद्योग हैं। कुछ लोगों ने नए भूमि सुधार कानूनों के अन्तर्गत शहर के अलावा खेतों में भी मकान डाल लिए हैं। यदि उन्हें शहर का अंग मान लिया जाए तो इसका क्षेत्रफल बहुत अधिक हो जाता है।

यदि भौगोलिक दृष्टि से देखा जाए तो पुराना शहर 'अन्धड़' या 'नड्ड' क्षेत्र में आता है, जहां कि भूमिगत पानी का स्तर बहुत ऊंचा है। यहां तक कि बरसात में कुएं, बावलियां (जो यहां भारी संख्या में हैं) ऊपर तक पानी से लबालब भर जाती हैं और गलियों में भी पानी बहना शुरू हो जाता है और यही कारण है कि यहां सिंचाई सुविधाओं के बिना भी धान, गन्ना व दूसरी फसलें

पैदा होती हैं। यद्यपि यहां नहरों और कूहलों से सिचाई की सुविधाएं पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं। नगर का वह भाग जो उत्तर में हाल ही में विकसित होकर नगर का भाग बन गया है, कंढी क्षेत्र में आता है। यहां पानी का स्तर काफी नीचा है और जल का साधन ट्यूबवेल ही हैं। इन क्षेत्रों में कम पानी वाली फसलें ही पैदा होती हैं।

कठूआ नगर को हम मोटे तौर पर चार भागों में बांट सकते हैं।

(1) कठूआ का पुराना नगर

(2) पारली बंड जोकि नगर के मध्य बहने वाले नाले के पूर्व की ओर अवस्थित है

(3) नगर की नई बस्तियां, जोकि नगर के उत्तर में अवस्थित हैं और

(4) सरकारी कालोनी जिसमें अधिकारियों और कर्मचारियों के बंगले व क्वार्टर हैं। इसी प्रकार कठूआ के मध्य में बहने वाला नाला नगर को दो मुख्य भागों में बांटता है। आज से कुछ समय पूर्व बरसात में यह नगर आधा-आधा बंट जाता था, जबकि नाले में पानी चढ़ जाता था, लेकिन आज इस पर दो पुल बन गए हैं, जिससे इन दोनों भागों का सम्पर्क बना हुआ है।

भाषा की दृष्टि से कठूआ की भाषा ठेठ डोगरी है, जैसे कि इस ज़िला के कंढी क्षेत्र में बोली जाती है। लेकिन पंजाब के निकट होने और वहां से विवाह आदि सम्बन्धों के कारण पंजाबी मिश्रित डोगरी भी कई घरानों में बोली जाने लगी है। सांस्कृतिक दृष्टि से भी यह शहर डुग्गर के रीति-रिवाजों, रहन-सहन और त्योहार आदि को वैसे ही अपनाए है, जैसे कि पूरा डुग्गर प्रदेश। हां पंजाब की तरह यहां बैसाखी का विशेष महत्त्व है। नगर में राम लीला ग्राऊंड में बैसाखी के दिन भारी मेला लगता है। रामलीला, दशहरा, राम नवमी, कृष्ण जन्माष्टमी के अलावा दूसरे त्योहारों पर भी झांकियां निकाली जाती हैं।

मन्दिरों में भारी चहल-पहल और प्रभात-फेरियां व कीर्तन होते हैं। गुरु पर्वों पर गुरुद्वारों में अखण्ड-पाठ चलते हैं।

जहां तक धार्मिक स्थानों का सम्बन्ध है, नगर के मुख्य बाज़ार के मध्य में श्री आशापूर्णी माता का प्रमुख मन्दिर है। जहां प्रतिदिन सैंकड़ों श्रद्धालु श्रद्धा से माता आशापूर्णी के दर्शन करते हैं। इसके अलावा यहां भगवती दुर्गा, भगवान शिव, विष्णु और श्रीराम के कई मन्दिर हैं। बावा सुरगल, गुग्गा व अन्य कुल देवताओं के भी मान्य स्थान हैं। पारली बंड में पीरबाबा की दरगाह भी विशेष श्रद्धा का केन्द्र है। यहां प्रतिदिन, विशेषकर वीरवार को सैंकड़ों श्रद्धालु मन्नतें मांगने पहुँचते हैं। इसी प्रकार शहर के मुख्य चौक में गुरुद्वारा सिंह सभा, नगर के सिख सम्प्रदाय के लिए आस्था और श्रद्धा का प्रमुख आकर्षण है।

चूंकि यह नगर कुछ गांवों से विकसित होकर एक शहर का चाहे रूप धारण कर गया है, फिर भी यहां का वातावरण, रहन-सहन और आकार-प्रकार प्राय: गांवों जैसे हैं। नगर में वृक्षों की बहुतायत हैं। नगर में और उसमें इर्द-गिर्द आमों के झुरमुट, अमरूदों. नाशपातियों जामुनों, लूचों आदि के बाग हैं और हर ओर छायादार वृक्षों की ठंडी छाया, बावलियों, कूपों झरनों एवं छोटे-छोटे नालों की छटा इसकी सुन्दरता को द्विगुणित करती है। जैसे कि ऊपर कहा जा चुका है कि यह एक विकासोन्मुख नगर है, जहां औद्योगिक प्रगति की भारी गुंजायश है। एक नगर की तमामतर सुविधाएं उपलब्ध होने और शिक्षा, संस्कृति, व्यापार, उद्योग व अन्य प्रगति की आशा के कारण बाहर से आने वालों के लिए यह आकर्षण का प्रमुख केन्द्र बन गया है। जिसमें इसके विकास, विस्तार और प्रगति की दिशा में निकट भविष्य में विशेष प्रभाव बनेगा और वह दिन दूर नहीं जब यह नगर राष्ट्रीय मार्ग एवं अन्य व्यवधानों को पार करता हुआ एक और रेलवे स्टेशन (गोविंदसर) और दूसरी ओर लखनपुर और तीसरी ओर रावी नदी तक अपनी सीमाएं विस्तृत कर लेगा और इस प्रकार क्षेत्रफल की दृष्टि से यह जम्मू से न केवल होड़ लेगा, बल्कि मैदानी और उपजाऊ धरती की छाती पर खड़ा यह नगर एक अद्वितीय नगर होगा। □

मीरपुर : एक सांस्कृतिक अध्ययन

□ डॉ० संसार चन्द्र

मीरपुर का नाम ज़बान पर आते ही उसके स्वर्णिम अतीत की याद ताज़ा हो जाती है। यह नगर और इसका पार्श्ववर्ती समूचा भू-भाग अत्यन्त स्वास्थ्य-वर्द्धक, हरा भरा, समृद्ध एवं उपजाऊ था, जो किसी ज़माने में अखण्ड जम्मू-कश्मीर राज्य का ज़िला स्तरीय मुकाम था और इसकी सीमा पर्वतराज हिमालय की निचली तराई के आंचल में फैले मैदानी प्रदेश को दूर-दूर तक स्पर्श करती थी। इसके पूर्व में जम्मू, उत्तर में पुंछ (जो उन दिनों एक स्वायत्त राज्य था), पश्चिम में रावलपिंडी का इलाका तथा दक्षिण में जेहलम नगर आवाद था। एक किंवदन्ती के आधार पर इस शहर के पूर्व में मीर नाम के एक फ़कीर और पश्चिम में पुरी नाम के एक महात्मा का निवास था। इन दो पहुंचे हुए महापुरुषों के नाम पर ही यह नगर 'मीरपुर' नाम से प्रसिद्ध पा गया था जो एक तरह से हिन्दू मुस्लिम मिलाप का ही प्रतीक बन गया था।

मीरपुर की जीवन यात्रा का शुभारम्भ यद्यपि मिलाप एवं भाईचारे की नींव पर टिका था, परन्तु किसे मालूम था कि एक ऐसा प्रलंयकारी दिन भी आयेगा जब देश की आज़ादी के महा समर में इसे अकस्मात् प्राणों की आहुति देनी पड़ेगी। घर के चिराग से ही घर जल उठेगा। महात्मा गांधी ने कहा था कि आज़ादी हमें एक भयानक ऑपरेशन के फलस्वरूप मिली है परन्तु जहां तक मीरपुर का सम्बन्ध है, यह ओपरेशन इस खूबसूरत नगर की सब से बड़ी त्रासदी सिद्ध हुआ था। यह त्रासदी वास्तव में भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के इतिहास की सब से बड़ी कुर्बानी थी। १९४७ के कबायलियों के हमले, उनकी लूट-खसूट, आगज़नी आदि अनेक अमानुषिक आपदाओं को सहकर भी यह शहर किसी न किसी तरह सिसक-सिसक कर अपनी जीवन नौका खेता रहा। मगर इसकी इस कदर विपन्न एवं जघन्य जिन्दगी भी कुदरत को एक आंख न भायी और अन्त में इसे पाकिस्तान की सब से बड़ी नदी-बांध परियोजना जो मंगला डैम के नाम

से प्रसिद्ध है, की विशाल उदरदरी में जल-समाधि लेनी पड़ी । अब तो चारों ओर मीलों तक अगाध जल का महासागर बिछा है, जिसमें झांकने पर इस शहर के एक सब से ऊंचे शिव-मन्दिर के कलश की चोटी जो मीरपुर की अन्तिम निशानी कही जा सकती है, के अतिरिक्त और सभी कुछ अदृश्य हो गया है । हां पानी की सतह पर कुछ बुलबुले अवश्य ही उठते-मिटते दिखाई दे जाते हैं, जो मीरपुर की त्रासदी की कहानी मानो उसकी अपनी जबानी इस प्रकार कह रहे हैं—-

मेरे डूब मरने का बायस न पूछो,
किनारे से टकरा गया था सफीना ।

मीरपुर कोई बहुत बड़ा नगर नहीं था । इसकी जनसंख्या लगभग बारह हज़ार थी । शहर में हिन्दू, सिख मिलकर सत्तर प्रतिशत और शेष आबादी मुसलमानों की थी । ईसाईयों की संख्या प्रायः नगण्य थी । हिन्दुओं में महाजनों की संख्या सबसे अधिक थी । महाजनों के अतिरिक्त ब्राह्मण, क्षत्रिय, राजपूत, धीवर, मेघ, डूम, चमार आदि भी यहां के निवासी थे । देहात में मुसलमान बहुमत में थे, जिनकी संख्या नब्बे प्रतिशत से कम न थी । ये लोग प्रायः खेती पर आश्रित थे । इनका दूसरा सर्वप्रिय पेशा सिपाहगिरी था । १९३९ की जंग में इस इलाके से फौज में भर्ती होने वालों की संख्या सबसे अधिक थी ।

मीरपुर धार्मिक लोगों का नगर था जहां स्थान-स्थान पर किसी न किसी देवी-देवता का मन्दिर मिल जाता था । यहां का रघुनाथ मन्दिर स्थापत्य कला की दृष्टि से अनुपम था । शिव मन्दिर, शिव मठ और महादुर्गा के भी कई मन्दिर थे । शहर के पूर्व में एक अत्यन्त विशाल एवं भव्य गुरुद्वारा था, जिसे दमदमा साहिब कहते थे । इस में स्त्रियों और पुरुषों के लिये अलग-अलग दो बहुत बड़े तालाब थे । शहर के पश्चिमी भाग में एक बहुत बड़ी मस्जिद थी, जहां जुम्मा की नमाज़ अदा करने के लिये नागरिकों के अतिरिक्त देहात की जनता भी बहुत बड़ी संख्या में एकत्रित होती थी ।

यह नगर मेलों-त्यौहारों आदि के लिये भी प्रसिद्ध रहा है । यहां प्रति मास कहीं न कहीं कोई मेला अवश्य लगता था । विजय दशमी अथवा दशहरे का त्योहार बड़ी धूमधाम से मनाया जाता था । मेले के दिन से लगभग एक सप्ताह पहले ही झांकियों की रेलपेल आरम्भ हो जाती थी । यह मेला नगर के उत्तर की ओर फैले विशाल रेतीले भू-खण्ड पर जिसे खड्ड (बरसाती नदी का दो किलोमीटर चौड़ा पाट जो अधिकतर निर्जल ही रहता था) कहते थे, बड़ी धूमधाम से मनाया जाता था । स्त्रियाँ घरों की छत्तों और चौबारों पर बैठकर ही रावण दहन का दृश्य देख लेती थीं । अन्य स्थानीय मेलों में वैशाखी का मेला पंचमूर्ति मन्दिर में, आषाढ़ी का पन्दी की ढक्की के नीचे, रक्षाबन्धन तथा भाई-दूज के मेले टाहली वाली खूई के मैदान में और बसन्त का मेला ऋषि के

तालाब पर लगता था। कुछ मेले शहर से बाहर दूर-दूर स्थानों पर भी लगते थे। शिवरात्रि का मेला शहर से दो तीन मील उत्तर की ओर एक ऊंची पहाड़ी पर निर्मित एक प्राचीन शिव मन्दिर के चारों ओर लगता था। पहाड़ी के नीचे एक सजला नदी थी, जिस में स्नान करने वालों का तांता लगा रहता था। दुर्गाष्टमी का मेला भी प्रतिवर्ष दो बार शहर में लगभग आठ मील पश्चिम की ओर मंगला देवी के किले पर लगता था। किले के साथ ही भगवती का एक विशाल मन्दिर था जहां भक्त लोग रात भर जागकर माता की भेटें गाते रहते थे। किले के नीचे एक ओर जेहलम नदी और दूसरी ओर अपर-जेहलम केनाल बहती थी। यही स्थान इस नहर का उद्‌गम स्थल भी था। इसी नहर के साथ-साथ लगभग २० मील पूर्व-दक्षिण की ओर अलीबेग नाम का एक गांव बसा था जिसके आकर्षण का मूल केन्द्र वहां का प्रसिद्ध गुरुद्वारा था जहां दिन रात गुरु का लंगर चलता रहता था। होले के अवसर पर तो इस गुरुद्वारे की रौनक सर्वथा कल्पनातीत हो जाती थी।

मीरपुर अपनी किस्म का एक निराला नगर था। बीसवीं सदी में भी वहां कोई सिनेमा-थियेटर, क्लब-नाचघर आदि का प्रबन्ध नहीं था। फैशन की रोशनी के अभाव की तरह यह नगर अभी तक बिजली की रोशनी से भी वंचित था। शहर में नलकों की भी कोई व्यवस्था नहीं थी। एक ऊंचे टिब्बे पर बसे होने के कारण शहर में मुश्किल से चार-पांच ही कुएं थे जो तीन-चार सौ फुट से कम गहरे न थे। शहर के चारों ओर बड़ी-बड़ी ढक्कियां थीं, जिन के नीचे कुओं का जाल बिछा था। प्रातःकाल यहां पर स्नानार्थियों की भीड़ देखकर आश्चर्य होता था। कुछ मनचले नौजवान यहां पर ही दो तीन घंटे गुजार देते थे। कोई मालिश करता, कोई डण्ड पेलता और कोई पूजा-पाठ में व्यस्त रहता था। कहते हैं एक बार एक मास्टर साहिब जो नये-नये जम्मू से तबदील होकर आये थे स्नान-पार्टी के इन लोगों से पूछ बैठे कि क्या इन लोगों को कोई काम-धन्धा नहीं होता जो लगभग आधे दिन तक यहीं जमे रहते हैं। संयोग से उस समय मीरपुर के एक मशहूर हाजिर जवाब सेठ भी वहां खड़े थे जो झट बोल उठे—"आप बहुत भोले हैं भाई साहिब। आप इनको नहीं जानते। इनके ज़मीन पर नहीं, आसमान पर हल चलते हैं। मास्टर साहिब जवाब से हैरान होकर सचमुच आसमान की ओर देखने लगे थे, जिससे सारी पार्टी खिलखिला कर हंस पड़ी थी।

मीरपुर के लोग पर्याप्त सम्पन्न थे। बहुत सस्ता ज़माना था। टके सेर भाजी टके सेर खाजा तो न था मगर सरसों का साग टके सेर ज़रूर मिल जाता था। जीवन निहायत सादा था। भोजन, लिबास, रहन-सहन, सब में सादगी का आग्रह बना रहता था। संयुक्त परिवार का रिवाज था। छोटे-छोटे घरों में बड़े-बड़े परिवार इसी सलीके से सिमट जाते थे कि कानों-कान खबर न होती थी।

ब्याह-शादी का सिलसिला भी शहर की चहारदीवारी तक ही सीमित रहता था। शास्त्रों का यह प्रमाण कि लड़की-दुहिता 'दूरे हिता' अर्थात् बेटी शहर से दूर ब्याहने योग्य होती है, इस नगरी में कारगर नहीं होता था।

शहर में एक ही बाज़ार था जो वहां के सीधे-सादे लोगों की तरह बिल्कुल सीधा था। अगर आप एक दिशा में खड़े होकर दूरबीन से देखें तो अन्तिम छोर तक सब कुछ दिख जाता था। बाज़ार के शुरू और अन्त में विशाल द्वार बने थे जिन्हें हाथी दरवाजे कहते थे। दुकानदारों के वहां अजब ठाठ थे। उनका विश्वास था कि 'चले दुकानदारी तो क्या करे तहसीलदारी।' बाज़ार में कुछ दुकानें ऐसी भी थीं जहां कोई माल सौदा नहीं होता था। दुकान पर केवल सफेद चादर बिछी रहती थी और एक लोहे की अलमारी या सेफ़ खड़ी रहती थी, जिसमें साहूकार लोग अपनी पोथियां, बही खाते आदि सम्भालते थे। इन दुकानों से साधारण ग्राहकों का कोई सरोकार नहीं था। हां, कभी-कभी साहूकारों के गुमाश्ते कर्ज लेने अथवा कर्ज़ चुकाने आ जाते थे। खाली बैठे रहने पर कुछ साहूकार अखबार या नावल पढ़ते रहते थे। वहीं पर कभी-कभी उनके दोस्त-यार भी गपशप के लिये आ जाते थे। कहीं ताश और शतरंज की बाजी लगती थी तो कहीं हुक्के के इर्द गिर्द सलाह-मशवरे चलते थे। गर्ज़ेकि किसी नियमित मनोरंजन के अभाव में ये लोग शुतर बेमुहार की तरह कोई न कोई शुग़ल पाल लेते थे।

प्रत्येक शहर के नागरिकों का अपना-अपना शौक होता है। कहीं पतंग-बाज़ी का ज़ोर होता है तो कहीं बटेरबाज़ी का। कहीं पर लोग दंगलों और कुश्तियों का मज़ा लेते हैं। बम्बई जैसे शहर में लोग रेस के दीवाने हैं। यद्यपि मीरपुर के लोग भी रेस के इलावा छोटे-मोटे शौक बरकरार रखते थे मगर उनकी रुचि गाने-बजाने और शेरो-शायरी की ओर कुछ अधिक थी। मीरपुर के बुज़ुर्ग बताते हैं यहां पर बड़े-बड़े नामी हकीम और शायर हो गुज़रे हैं। हकीमों में मियां शाबान का नाम बहुत प्रसिद्ध था जो अपने युग का लुकमान समझा जाता था। इसी प्रकार मियां मुहम्मद बख्श शायरों का सरताज था। यह शायर मीरपुर से आठ-दस मील दक्षिण की ओर खड़ी के इलाके का निवासी था। इस शायर के सम्बन्ध में अनेक कहानियां प्रसिद्ध थीं। बुज़ुर्ग बताते हैं कि आरम्भ में यह शायर छोटे-मोटे किस्से लिखा करता था। इसका एक भाई भी शायर था जो उससे घोर ईर्ष्या करता था। एक बार उसने मुहम्मद बख्श को चुनौती दी थी कि यदि उसमें कोई दम-ख़म है तो वह किस्सा-गोई छोड़ कर किसी महाकाव्य की रचना करे। मियां मुहम्मद ने 'सैफलमलूक' महाकाव्य लिख कर जहां अपनी प्रतिभा का परिचय दिया था वहां उसने अपने ईर्ष्यालु भाई की चुनौती स्वीकार करके उसे लज्जित भी कर दिया था।

'सैफलमलूक' पंजाबी साहित्य में एक उच्चकोटि का महाकाव्य माना

जाता है । वारिस शाह की 'हीर' के बाद इस काव्य की सर्वप्रियता सब से अधिक है। यहां के लोग इस काव्य को तरन्नुम से पढ़ते थे । यह महाकाव्य पहाड़ी संगीत का चश्मा माना जाता है। पहाड़ों के दामन में सांय-सांय करते चील के वृक्षों के मध्य गुजरते रसिक यात्री, जब कानों में उंगलियां देकर सैफल मलूक के पद अलापते थे तो सारा वातावरण एक अपूर्व मस्ती से झूम उठता था। आज भी इस काव्य की मधुर स्वर लहरी श्रोताओं की हृदयवीणा के तार झंकृत कर देती है। प्रेमरस में डूबे मियां साहिब के शेर काव्य रसिकों के अधरों पर अनायास थिरक उठते हैं—

सदा न बागीं बुलबुल बोले सदा न बाग बहारां,
सदा न हुस्न जवानी रेंहदा सदा न सोहबत यारां।
सदा न लाट चरागां वाली सदा न सोज़ पतंगां,
सदा न हत्थीं मैंहदी रत्ती सदा न छनकन वंगां।

काव्य के अनूठे उपमान एवं बिम्ब हृदय को मोह लेते हैं—

बेकदरां दी यारी कोलों फल किसे नहीं पाया,
किक्कर ते अंगूर चढ़ाओ हर दाना जख्माया।

इस में संदेह नहीं कि मीरपुर की सांस्कृतिक वरासत हमारी चिरनिधि है। इसकी प्रत्येक उपलब्धि में इसकी स्थानीय छाप यत्र-तत्र झलक उठती है। भारत की सामूहिक संस्कृति वस्तुतः एक विशाल सागर के समान है, जिसमें प्रान्तीय संस्कृतियां विभिन्न दिशाओं में बहने वाली नदियों के समान सम्मिलित होती हैं। मीरपुर की संस्कृति भारतीय संस्कृति के मणिमौक्तिकमय छत्र में इन्द्रधनुषी आभा बिखेरने वाली वैदूर्य मणि है, जो अपने सक्रिय योगदान से भारतीय संस्कृति की अनेकता में एकता को चार चांद लगा देती है। □

राजौरी : सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में

□ ज्योतीश्वर 'पथिक'

उत्तर क्षेत्रीय पीर पंचाल पर्वतांचल से दरहाली नाला अठखेलियां करता हुआ सरकता है। पत्थरों के साथ टकराता हुआ झागदार बर्फानी जल शरीर को छूते ही सिरहन पैदा कर देता है और पश्चिमोत्तर दिशा में भिबर गली के पहाड़ों से सरकती है एक ओर नदी, दोनों यहां मिलती हैं तो नाम पड़ता है राजौरी तवी। इसके किनारे पर एक टीले पर आबाद था पुराना राजौरी नगर। मगर अब यह नगर दूर-दूर तक फैलता जा रहा है अपने गर्भ में बहुत सारी खून से लिथड़ी कहानियां समेटे हुए, कुछ कही, कुछ अनकही।

राजतरंगिनी में राजौरी का नाम राजापुरी है जिसे बिलावर के वैभवशाली पाल राजाओं ने आकर बसाया था और उन्नीसवीं शताब्दी में महाराजा रंजीत सिंह के आक्रमण तक पाल वंश का शासन यहां चलता रहा। यह और बात है कि मुस्लिम एवं मुग़ल प्रभावों के कारण पाल राजाओं ने भी धर्म-परिवर्तन कर लिया और इनके साथ जराल भी आ मिले। जराल भी राजपूत थे जो समय के साथ धर्म परिवर्तन करके मुसलमान बन गए। ब्रिटिश काल में राजौरी, नौशहरा ज़िले का एक भाग था। शायद यह बात अजीब भी महसूस हो मगर स्थानीय लोगों को यह विश्वास है कि सिकंदर और पोरस के बीच घमासान का युद्ध जिस कुर्री के मैदान में हुआ वह कोई अन्य स्थान नहीं बल्कि ज़िला गुजरात में भिबर के साथ लगने वाला खाड़ियां का मैदान था। खाड़ियां में आजकल पाकिस्तान की फौजी छावनी है। जेहलम से चिनाब तक के सफर में सिकंदर नौशहरा के क्षेत्र से होकर गुज़रा था और अखनूर के रास्ते उसने चिनाब नदी को पार करके रावी की ओर कूच किया था। परन्तु यह सब दंत-कथाएं मात्र हैं। ऐतिहासिक प्रमाणों की कसौटी पर पूरे नहीं उतरतीं।

राजौरी का पहला उल्लेख ह्यूनत्सांग के सफरनामे में मिलता है। उसने यहां के लोगों को श्यामवर्ण एवं अक्खड़ लिखा है। यहां के मौसम की गर्मी

एवं ज्वर का जिक्र भी उसने किया है। परन्तु अब यह सारी बातें अतीत मात्र हैं। यहां के प्राय: लोग मृदु भाषी एवं सुसंस्कृत हैं। शायद यह समय एवं काल का प्रभाव है।

मुग़ल शासनकाल मे राजौरी एक हंसता-गाता प्रदेश था। जहांगीर का कारवां कश्मीर जाते हुए यहीं से गुज़रता था। चिंगस, थन्ना मंडी, दरहाल अब भी जगह-जगह पर मुग़लों की बनाई हुई सराएं हैं, किले हैं और दूसरे स्मारक हैं जो यहां को ऐतिहासिक महत्ता पर रोशनी डालते हैं। कहा जाता है कि मुग़ल सम्राट जहांगीर की मृत्यु कश्मीर से वापसी पर राजौरी के आस-पास हो गई थी। उस समय की राजधानी लाहौर तक पहुँचना एक मुश्किल काम था और दूसरे मृत शरीर में बदबू भी पैदा हो सकती थी। तीसरे मुग़ल शहज़ादों मे राजसत्ता के लिए युद्ध का सब से बड़ा खतरा भी मंडरा रहा था। अत: नूरजहां ने लाश से अंतड़ियां निकलवा कर चिंगस की सराय में दबा दी थीं। अब यहां पर मिट्टी का बना हुआ एक मज़ार मिलता है और दीवारों पर मुग़ल समय के आलेख मौजूद हैं।

मुगल सरायों में शहजादियों एवं बेगमात के नहाने के लिए जो स्नान गृह (हमाम) बनाए गए थे वे अपने आप में अनुपम थे। एक विशाल कमरे के ऊपर पानी का विशेष प्रावधान है। पत्थरों पर चूने का प्लास्टर चढ़ाया गया है, और इन पर उमदा किसम के बेल-बूटों का काम है। ईंटों, चूने और सुर्खी से बनाए गए यह भवन मुग़ल निर्माण शैली के अनूठे नमूने हैं।

राजौरी नगर का अपना ही वैभव था। महाराजाओं की हवेलियों वाले क्षेत्र को अंदरकोट कहा जाता था। आज भी यह क्षेत्र नगर का महत्त्वपूर्ण भाग है। इसके साथ ही इमारतें अब धीरे-धीरे खंडहरों में बदल रही हैं। कभी यहाँ पाल राजा रहा करते थे। यह बहुत ही सुंदर महल था। इस महल के निर्माण में कई वर्ष लगे थे। इसके साथ ही एक मंडी थी जहां काफी चहल-पहल रहा करती थी। राजा रंजीत सिह के आक्रमण के समय यह मंडी पूरी तरह तबाह की गई। १८८८ में आने वाले एक यात्री वोगल ने सफरनामे 'कश्मीर एंड पंजाब' में लिखा है—"राजौरी में बहुत सारे दर्शनीय स्थल हैं। पुराने राजाओं का कब्रिस्तान मुसाफिर खाना और बाज़ार काफी बा-रौनक हैं। नदी के पार पहाड़ी पर एक किला है जिसके निर्माण में काफी समय लगा था।'

मुग़लों के बाग लगाने, इन्हें बनाने एवं संवारने में बहुत रुचि थी। आज से एक सौ वर्ष पूर्व यहां पर भी एक बहुत सुंदर उद्यान था, दूर-दूर तक लंबाई में पट्टी पर फैले हुए इस बाग के इर्द-गिर्द एक पत्थरों की दीवार चिनी गई थी। उद्यान के बीचों-बीच पानी की दो नालियां एक-दूसरे के साथ 90° का कोण बनाती थीं। पुराने वक्तों में नालियों पर एक पुल बना हुआ था। इन नालियों को हालांकि आम दिनों में पार किया जा सकता है मगर बाढ़ के दिनों

में नाली पार करना असंभव हो जाता है। इस बाग के एक कोने पर हमाम (स्नान गृह) बने हुए हैं।

बाहर से आने वाले यात्रियों के लिए एक बंगला बनाया गया है। इसके साथ भी ९० वर्ग फीट का एक बाग जुड़ा हुआ है जिसके बीचों-बीच एक नहर बहती है। इस बाग में पत्थरों के बने हुए फव्वारे भी बने हुए हैं। इसके साथ ही नदी की तरफ एक मचान बना हुआ है। यह मचान दो भागों में बंटा है। प्रवेश द्वार के साथ ही एक छोटी इमारत बनी हुई है। यात्रियों के ठहरने के लिए भवन का रख-रखाव भी खूब है। राजमहल के साथ बहुत सारी इमारतें जुड़ी हुई थीं और नीचे की ओर प्रवेश द्वार के साथ चट्टान पर बना हुआ एक मन्दिर था। नगर में मकान पत्थरों को तराश कर बनाए जाते थे और बहुत सारी इमारतें दो मंज़िला थीं।

आज से सौ वर्ष पहले नदी पर कोई पुल नहीं था। सिर्फ पाए बनाए गए थे जो निर्माण कला के एक अनूठे नमूने का स्थान रखते थे। १९४७ के बाद एक झूलापुल बनाया गया और गाड़ियां काफी घूम-फिर कर शहर के अंदर प्रवेश कर पाती थीं। १९८२ में एक नया पुल बनाया गया, अब नदी के आर-पार यातायात आसानी से हो सकता है।

भौगोलिक दृष्टि से यह नगर ३५°—२५° लैटीच्यूट (अक्षांश) और ७४°—२१' लांगीच्यूट (देशान्तर) में स्थित है इसकी ऊंचाई समुद्रतल से ३०९४ फीट है और तवी नदी से नगर १५० फीट की ऊंचाई पर है। बहुत सारे पहाड़ी नदी-नालों के अतिरिक्त तत्तापानी के स्थान पर गंधक के पानी वाला चश्मा भी हैं। दूर-पार के लोग यहां पर स्नान करने के लिए आते हैं। सर्दियों में खाना-बदोश गुज्जर एवं बकरवाल यहां पर स्नान करते हैं। काला कोट से रनसूह् की पहाड़ी पट्टी में कोयले एवं चूने के भारी भंडार हैं। कोयले का खनन कार्य एक निगम के अधीन है जबकि चूने के भंडारों का लाभ उठाने के लिए मिनी सीमैंट प्लांट लगाया जा रहा है। यहां पर सर्दियों में प्राय: बर्फानी हवाएं चलती हैं और नदी के पाट के कारण मौसम काफी ठंडा होता है। बारिशें भी अक्सर होती हैं और गर्मी का प्रकोप अधिक नहीं होता। सर्दियों में ज्वर का प्रकोप अधिक रहता है। यहां पर सर्दियों का मौसम विभिन्न चरणों में आता है। चालीस दिन तक सौड़ियां-सौड़ का दौर चलता है—जब सर्दी एवं बारिश का आरम्भ होता है। फिर चालीस दिन तक जंड परेतु आता है जब बर्फानी हवाएं चलती हैं और आंधियां आती हैं। फिर धरत परेतु आते हैं जब काफी बारिशें होती हैं और अप्रैल मास के अंत में मौसम खुलने लगता है। बरसात भी यहां जम कर होती है। पहाड़ी क्षेत्र होने के कारण बाढ़ों से काफी नुकसान होता है।

१९८१ की जनसंख्या के अनुसार राजौरी जिले की आबादी ३.५४ लाख

है। पहले यहां चार तहसीलें थीं मगर अब पांच हो गई हैं। इस ज़िले को सात विकास खंडों में बांटा गया है। बहुतायत मुस्लिम आबादी की है। जिनमें कश्मीरी और गुज्जर शामिल हैं। तहसील बुद्धल और राजौरी के कुछ भागों में गुज्जर आबाद हैं, थन्ना मंडी और दरहाल के क्षेत्रों में कश्मीरी लोग आबाद हो गए हैं। थन्ना मंडी में चिकरी जुड़ा की कंघियां बनाने का कारोबार विशेष रूप से चलता है। प्राय: लोग मेहनत-मज़दूरी करते हैं, गुज्जर लोग गाए-भैंस के रेवड़ लेकर पहाड़ों की ओर चले जाते हैं। पुशाना की पहाड़ी चरागाहों पर ग्रीष्म ऋतु में काफी चहल-पहल होती है। गुज्जर लोग अलीआबाद सराय से होते हुए पीर पंचाल पर्वत पार करके ग्रीष्म ऋतु में प्राय: कश्मीर घाटी तक आते-जाते हैं। दरहाल के मलिक काफी जुझारू हैं। दूसरे विश्व युद्ध में यहां के जवानों ने सक्रिय भाग लिया था। अत: अब भी पुलिस एवं सेना में यह लोग बढ़-चढ़ कर भर्ती होते हैं। दरहाल के वीर जवानों के सैन्य शौर्य की स्मृति में यहां एक स्तूप बना हुआ है जिस पर एक शिलालेख है। राजौरी, नौशहरा, काला कोट एवं सुंदरबनी में हिन्दू भी भारी संख्या में रहते हैं। नौशहरा के नौनियाल एवं विला दरहाल क्षेत्रों से सिख आबाद हैं। सीमा के निकट रह कर यह लोग बहादुरी के साथ खेतों का काम करते हैं। नौनियाल का गुरुद्वारा बहुत सुंदर पूजा स्थल है। दूसरी ओर थन्ना मंडी के ऊपर शाहदरा शरीफ में बावा गुलाम शाह का मकबरा जनता की आस्था का केन्द्र है। हज़ारों की संख्या में श्रद्धालु यहां पर आते हैं और अपने मन की मुरादें पाते हैं। मीरपुर कोटली के बहुत सारे शरणार्थी यहां पर आकर बस गए हैं। सभी धर्मों के लोग अब यहां की सोंधी मिट्टी में रच बस गए हैं जैसे युगों से वे यहीं पर रह रहे हों।

राजौरी ज़िले में मिश्रित जनसंख्या होने के कारण सभी धर्मों में के तीज-त्योहार अत्यधिक उत्साह के साथ मनाए जाते हैं। वैशाखी का त्योहार यहां पर विजय दिवस के रूप में मनाया जाता है। इस दिन राजौरी के बलिदान भवन पर एक भव्य समारोह होता है और उन सभी लोगों को याद किया जाता है जो पाकिस्तानी कबयालियों के कत्ले-आम के शिकार हुए। इसके साथ ही सेना के प्रति कृतज्ञता प्रकट की जाती है। इसी तरह यहां दीवाली के दिन दीपमाला होती है वहां १० मघर को शहीदी दिवस मना कर मरने वालों के प्रति श्रद्धांजलि अर्पण की जाती है। हिन्दू घरानों में लोहड़ी का त्योहार भी उत्साह के साथ मनाया जाता है। मैदानी क्षेत्रों की तरह यहां छज्जे (मोर की झांकी) नहीं नचाए जाते बल्कि रात को अलाव जला कर पूजा की जाती है। सुंदरबनी के क्षेत्रों में इन दिनों दंगल इत्यादि का आयोजन भी होता है। गंभीर मुगलां के क्षेत्र में मेले भी लगते हैं। मुसलमान लोग ईद का त्योहार उत्साह के साथ मनाते हैं। मस्जिदों में नमाज के अतिरिक्त दावतें आम होती हैं, जिनमें सभी धर्मों के लोग शामिल होते हैं।

पहाड़ों में कृषि का जोखिम काम निपटाने के लिए काफी मेहनत दरकार होती है। बुवाई और जुताई तो अपने-अपने खेतों में कर ली जाती है। पर फसल की कटाई का काम सामूहिक तौर पर किया जाता है। हर खेत में एक दिन सारा गांव मिल कर कटाई करता है। ढोल की थाप पर कटाई का काम तेज़ी से आगे बढ़ता है और शाम तक गांव के सारे लोग मिल कर खेत काट डालते हैं। दिन भर में खेत की कटाई का काम समाप्त होने के बाद घर वाले सभी लोगों को चीनी एवं घी मिला कर चावल खाने के लिए देते हैं। दूसरे दिन कटाई का काम दूसरे खेत में चलता है। इस तरह बारी-बारी सभी खेतों की कटाई का काम निपटाया जाता है। सामूहिक कटाई के बारे में कृष्ण चन्द्र के उपन्यास 'शिकस्त' में विस्तार पूर्वक लिखा गया है। जो लोग घी एवं चीनी नहीं जुटा पाते वे खाने के लिए दाल-चावल ही देते हैं। साहूकार लोग कटाई करने के लिए या तो दूसरे लोगों को भेजते हैं या अन्न, घी या पैसे का भुगतान करते हैं। इस तरह यहां पर खेत मजदूरी की अनूठी प्रणाली चल रही है और लेतरी का यह पर्व गांव-गांव में एक त्योहार का महत्त्व रखता है।

कालाकोट तहसील में पहाड़ी की चोटी पर बसे गांव रनसू से शिव खोड़ी को रास्ता जाता है। यहां पर एक गुफा में भगवान शिव की स्थापना है और यह स्थान लोगों की आस्था का केन्द्र है। राजौरी, ऊधमपुर एवं जम्मू जिलों के लोग यहाँ पर शिवरात्री के समय आयोजित मेले में शामिल होते हैं।

यहां पर डोगरी, कश्मीरी एवं गोजरी भाषाएं प्रमुख्यता प्रयोग में लाई जाती हैं। मीरपुर और कोटली से आने वाले लोगों की भाषा डोगरी-पंजाबी एवं पहाड़ी का सामंजस्य है। डोगरी लोक गीतों का चन्न यहां स्थानीय रंगत में प्रस्तुत होता है। जिसमें राजौरी एवं बुद्धल का उल्लेख आता है। गोजरी लोक-गीतों में कुक्कू एवं बैसाख के अतिरिक्त प्रचलित पंजाबी विधाएं अपनाई गई हैं। बैसाख के आने पर जब मौसम खुल जाता है तो गुज्जर लोग अपने माल-मवेशियों को लेकर पहाड़ों की ओर चल देते हैं। कुछ प्रेमिकाएं अपने पिया के विछोह में बैसाख गाने लगती हैं। इसके अतिरिक्त पंजाबी माहिया भी गोजरी रंगत में प्रस्तुत किया जाता है। यद्यपि दूसरे क्षेत्रों में लोक-गीत धीरे-धीरे लुप्त होते जा रहे हैं मगर गोजरी लोक-गीतों का खज़ाना अभी काफी समृद्ध है। राज्य की भाषा, संस्कृति एवं कला अकादमी ने गोजरी लोक-गीतों का संकलन भी प्रकाशित किया है।

राजौरी क्षेत्र की नियति रही है कि इस धरती ने जंग और तबाही के घाव कई बार सहे हैं। कई बार यहां की जनता के घर, मकान जले, खेत उजड़े और लोगों को अपने प्राणों से हाथ धोने पड़े। जेहलम से चिनाब तक अपनी यात्रा में सिकंदर की सेनाओं ने इस धरती को रौंदा, यहां के खेतों खलिहानों को उजाड़

डाला और यहां के घरों को जला डाला। शायद यह तबाही का पहला नजारा था जो यहां की जनता को झेलना पड़ा। फिर पाल राजाओं ने यहां पर ऊधम मचाया, घरों मकानों को जला कर राख कर डाला और यहां के लोगों का कत्ले-आम किया। हर सभ्यता की स्थापना मारकाट और कत्ले-आम के बाद हुई है। राजाओं के गुण-गाण हुए मगर उन्होंने कई भागों को सूना बना डाला। उन लोगों ने अपने शासन की स्थापना की और वैभव का डंका बजाया।

मुग़लों ने कश्मीर पर आक्रमण किए तो उन्हें भी इस मिट्टी को रोंद कर कश्मीर पहुंचना पड़ा। क्योंकि यह आक्रमण कई तरफा होते थे और कश्मीर घाटी तक पहुंचने के लिए यह सुगम मार्ग था। लाहौर दरबार से जब कभी कूच हुआ यहां के लोगों के लिए अनेक मुसीबतों का सामना हुआ। अकबर महान ने श्रीनगर पहुंचने के लिए किश्तवाड़ के अतिरिक्त यहां के रास्ते भी हमला किया। जहांगीर ने इस क्षेत्र को बनाया संवारा और शाहजहां यहीं से होकर आराम करने के लिए कश्मीर जाता रहा। मुग़लों की निशानियां गांव गम्भीर मुगलां और कई लोगों के नाम के साथ मुग़ल शब्द से जुड़ी हुई हैं। मुग़ल सूबेदारों का इस क्षेत्र में भारी दबदबा था। वे आम लोगों से डट कर बेगार लेते और अमीर लोगों से पैसे बटोरते।

इसके बाद सिखों का दौर आया। महाराजा रंजीत सिंह ने कश्मीर विजय के लिए चार बार चढ़ाई की, बुद्धल, थन्ना मंडी, राजौरी के क्षेत्रों में भारी तबाही हुई, आगजनी, मारकाट, लूट-पाट हुई और यहां की हंसती हुयी बस्ती को उजाड़ दिया। पहले औरंगज़ेब के सूबेदारों, नादिरशाह के उत्तराधिकारियों एवं पठानों ने इस क्षेत्र में भारी कुहराम मचाया था। मगर इस बार यह बस्ती बार-बार के आक्रमणों से जल कर ध्वंस्त हो गई। मान सिंह शुक्रचकिया, दीवान चन्द्र मिश्रा, गुलाब सिंह जैसे जरनलों की सेनाएं यहां से होकर पुन्छ एवं कश्मीर की ओर जाती रहीं। बारूद और गोलों से यहां की धरती का सीना छलनी होता रहा और कारवां अपनी विजय का डंका बजाते हुए आगे बढ़ते रहे। पुरानी कला-कृतियां, महल मीनारे, सब तबाह हो गए। बाकी बचे तो बंद किले जहां गोला बारूद रखा जाता और सेनाएं जमा की जाती।

धीरे-धीरे डुग्गर के बाईस राज्यों के साथ राजौरी का भी अपना राज्य समाप्त हो गया और उसे महाराजा गुलाब सिंह ने जम्मू राज्य का एक भाग बना लिया। राजौरी का नाम बदल कर रामपुर कर दिया गया, और बुद्धल का राजनगर। मगर यह नए नाम अधिक प्रचलित नहीं हुए और डोगरा राजाओं के वैभव के साथ-साथ यह नाम भी समाप्त हो गए। राजस्व विभाग के पुराने कागज़ात में अब भी रामपुर का नाम मिलता है।

राजौरी के राजाओं का विस्तृत इतिहास मिर्ज़ा मुहम्मद खान ने तैयार किया था। इसमें हिन्दू एवं मुस्लिम राजाओं की वंशावली एवं अन्य ब्योरा

विस्तार पूर्वक दिया गया था। मिर्ज़ा मुहम्मद खान शेख अब्दुल्ला के समय (१९७५ के बाद) विधान परिषद के सदस्य रह चुके हैं। इन का निधन एक-दो वर्ष पूर्व ही हुआ है। अब तारीख-ए-राजौरी की पांडुलिपि किस के पास है उसका पता नहीं। उनके बेटे या अन्य लोगों से लेकर इसे प्रकाशित किया जाए तो सांस्कृतिक विरासत की बहुत बड़ी सेवा हो सकेगी।

कुछ वर्ष पूर्व (प्राय: १९८२ में) राजौरी के साथ लगने वाली पहाड़ी की एक चोटी पर सेना की ओर से 'हाल आफ फेम' का निर्माण किया गया है। इस हाल में उन वीर सेनानियों की स्मृति है जिन्होंने १९४७, १९६५ और १९७१ के तीन भारत पाक युद्धों में अपनी जान जोखिम में डाल कर इस क्षेत्र की रक्षा की। इन सेनानियों में जनरल यदुनाथ सिंह, ब्रिगेडियर उस्मान और कर्नल हीरानंद दुबे विशेषत: उल्लेखनीय हैं। नौशहरा के मुहाज़ पर ब्रिगेडियर उस्मान ने पाकिस्तानी कबायलियों का डट कर मुकाबिला किया। उस समय के पाकिस्तानी शासकों ने ब्रिगेडियर उस्मान के सिर का इनाम रखा हुआ था जिन्होंने नौशहरा के झंगड़ वेरी पत्तन सैक्टर में पाकिस्तानियों का भारी जानी नुकसान किया था और यहीं पर वह लड़ते हुए शहीद हो गए। नौशहरा सुंदर बनी सड़क पर जहाँ ब्रिगेडियर उस्मान तोप का एक गोला लगने से शहीद हुए, पर एक स्मारक बनाया गया है। इसके अतिरिक्त झंगड़ के सीमावर्ती गांव में ब्रिगेडियर उस्मान मैमोरियल अस्पताल सेना की ओर से बनाया गया है। जनरल यदुनाथ सिंह का स्मारक नौशहरा में बनाया गया है। उन्होंने अप्रैल १९४८ में राजौरी को पाकिस्तानी चंगुल से आज़ाद कराने में भारी भूमिका निभाई है।

राजौरी नगर के लिए १९४७ की दीवाली की रात सब से काली रात थी जब राजौरी नगर के सामने वाले डन्नीधार किले पर पाकिस्तानी कबायलियों का अधिकार हो चुका था। शहर की सारी आबादी अदरकोट के किले में आकर जमा हो गई थी। थानेदार हरिसिंह को पाकिस्तानी कबायली पकड़ कर ले गए थे। कहा जाता है कि थानेदार को कबायली पूछने लगे—"तुम मुजरिमों को सज़ा कैसे देते हो?" उसने कहा—"आहिस्ता-आहिस्ता!" "तो हम भी तुम्हें आहिस्ता-आहिस्ता सज़ा देंगे।" इसके बाद थानेदार हरिसिंह का अंग-अंग, जोड़-जोड़ काटा गया और उसकी लाश को गीधों के खाने के लिए फैंक दिया गया।

दूसरे दिन सुबह लूट-पाट और मार-काट का बाज़ार गर्म हुआ। जो खूनी खेल मीरपुर और कोटली में खेला गया था। यहां पर भी दुहराया जाने लगा। ७५ वर्षीय सीताराम चड्ढा ने यह सब भोगा है और उस समय की बातें बताते हुए उनकी आँखों में आंसू आ जाते हैं। बहुत सारी महिलाएं कुंएं में कूद गईं। नगर के प्रतिष्ठित लोगों की हत्या कर दी गई। हरिचंद मल्होत्रा साहूकार को

मौत की नींद सुला दिया गया। और लगभग १०,००० लोगों का नर संहार किया गया। ५०० नर नारियों को कैद कर लिया गया और सारा नगर शमशान दिखाई देने लगा।

कैदी बनाए गये लोगों को पुन्छ की तहसील बाग के एक कैंप में रखा गया। इन लोगों को तन ढांपने के लिए बोरियों के कपड़े दिये जाते, खाने को आधा पेट रोटी। कई लोगों को यातनाएं देकर मारा गया। श्री सीताराम चड्ढा कहते हैं कि इस अंधियारे में भी एक रोशनी की किरण थी—गांव का मुसलमान ज़ैलदार जिसने सभी महिलाओं की अपनी बहु-बेटियों की तरह रक्षा की।

१३ अप्रैल १९४८ को भारतीय सेनाओं ने बहादुरी के साथ लड़कर शत्रु को खदेड़ डाला और राजौरी को आज़ाद करा लिया। छः मास तक यहां पाकिस्तानी लुटेरों का शासन रहा और जनता अत्याचारों एवं यातनाओं की चक्की में पिस्ती रही। १९४८ की बैसाखी यहां की जनता के लिए खुशी का संदेश लेकर आई।

राजौरी में इन शहीदों की याद में एक बलिदान भवन बनाया गया है। यहां इस नर संहार के कुछ चित्र लगाए गए हैं। प्रत्येक वर्ष दीवाली और बैसाखी के अवसरों पर यहां उन शहीदों को याद किया जाता है।

सेना की ओर से भी 'राजौरी-डे' मनाया जाता है। इस दिन सेना की ओर से विशेष उत्सव मनाए जाते हैं। जिनमें नागरिकों का भी भारी योगदान होता है। लोग बढ़-चढ़ कर भाग लेते हैं। क्योंकि वे वीर सैनानियों के सदैव कृतज्ञ रहे हैं।

१९६५ में भी यहां पर काफी तबाही हुई। पाक घुसपैठियों ने लोगों को खूब लूटा, कत्ल किये और बुद्धल में तो काफी टकराव भी हुआ। मगर इस बार भारतीय सेनानियों ने इनके पांव नहीं जमने दिये। यहां के लोगों ने सेना की भरपूर सहायता की। १९७१ की जंग में भी पाकिस्तान की तरफ से काफी गोली-बारी हुई। मगर हमारे जवानों ने डट कर मुकाबिला किया और शत्रु को आगे नहीं बढ़ने दिया। यहां की जनता ने इन हालात का डटकर मुकाबला किया और सेनाओं के साथ कंधे से कंधा मिलाकर जूझते रहे।

बार-बार मिटने के बाद अब राजौरी का एक नया रूप उभर रहा है। इतिहास की खरोचों के बावजूद इसके चेहरे पर एक नयी मुस्कान है। □

पुन्छ : एक सांस्कृतिक सर्वेक्षण

□ खुशदेव 'मैनी'

पुन्छ का शहर पीर पंचाल की पर्वतीय तिराइयों के ऐन बीच में यों सिमटा हुआ लेटा है जैसे माँ की गोद में बच्चा। प्राकृतिक सौंदर्य, मनोहर दृश्यों एवं सतरंगे मौसमों के आधार पर इसे छोटा कशमीर भी कह सकते हैं। इस शहर के चारों ओर बर्फ के कलश पहने हुए ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों का दृश्य आकाश को आलिंगन में बांधे होने का आभास देते हैं।

पुन्छ शहर दरिया पुन्छ और नाला बेतार के संगम पर स्थित है। बीस हज़ार की जनसंख्या वाले इस शहर को स्वतंत्रता पूर्व से ही म्यूंसिपल सिटी का दर्जा प्राप्त है। राज्य की शीतकालीन राजधानी (जम्मू) से इसकी दूरी ६४८ किलोमीटर है। भौगोलिक दृष्टि से यह शहर ३३°·२०′ से ३४° अक्षांश तथा ७३·३५′ से ७४°·० अक्षांश में पड़ता है। यह महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थान जम्मू-कशमीर राज्य के दक्षिण-पच्छिमी कोने में स्थित है। इसके उत्तर में ज़िला बारामूला, पूर्व की ओर शोपेइयां तथा राजौरी, जबकि दक्षिण एवं दक्षिण-पश्चिम में युद्ध-विराम रेखा पड़ती है। पश्चिम की ओर से यह शहर युद्ध विराम रेखा से केवल तीन किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। इस शहर में हिन्दू, मुस्लिम एवं सिक्ख तीन सम्प्रदाय के लोग किसी सुंदर कालीन में सज्जित रंग-बिरंगे फूलों की भांति प्रेम, सहृदयता एवं मेल-मिलाप की भावना से सदियों से इकट्ठे रहते चले आ रहे हैं। जिस प्रकार इस शहर का भूगोल अति सुंदर है उसी प्रकार इसका इतिहास भी अत्यन्त दिलचस्प है। इस शहर ने जमाने के बहुत से उतार-चढ़ाव देखे हैं। आइये इतिहास के दर्पण में इस शहर की एक झलक देखें।

नामकरण : दन्तकथा के झरोखे में : नीलमत पुराण के अनुसार सतीसर झील में एक राक्षस रहता था जो पुन्छ और दूसरे इलाकों के लोगों तथा उनके

माल-मवेशियों को अपना ग्रास बनाता रहता था। इस राक्षस का नाम संगरा था तथा इसके बेटे का नाम जलोद्भव था। इन दोनों ने पुन्छ एवं अन्य बाहरी इलाकों के लोगों को बेहद तंग कर रखा था। सौभाग्यवश इन्हीं दिनों ब्रह्मा जी के पोते महात्मा कश्यप ऋषि अपने भाई महात्मा पुलस्त्य जी के साथ तीर्थों के दर्शन करते-करते पुन्छ से इलाके में भी आए। जब वह राजौरी से आगे एक गांव में पहुंचे तो पुन्छ तथा राजौरी क्षेत्र के जन-साधारण एवं राजा नील उनकी सेवा में उपस्थित हुए और प्रार्थना की कि वह राक्षस से मुक्ति दिलाएं। जन-साधारण की व्यथा को महसूस करके कश्यप ऋषि कश्मीर चले गए और सतीसर झील का पानी निकाला और जलोद्भव का संहार किया जबकि पुलस्त्य ऋषि पुन्छ शहर के स्थान पर आ गए और वे यहां आश्रम बना कर निवास करने लगे और भक्ति एवं जप-तप में संलग्न हो गए। नील मत पुराण के अनुसार पुलस्त्य ऋषि बहुत मूर्ति कला के मर्मज्ञ भी थे। उन्होंने स्वयं मूर्तियां बना कर इस इलाके में जगह-जगह स्थापित कीं। इस प्रकार अपनी तपस्या और शिल्प के कारण वह यहां के जन-साधारण में बहुत लोकप्रिय हो गए। लोगों की श्रद्धा और विश्वास उन पर बढ़ने लगा। और वह क्षेत्र की सब से बड़ी माननीय विभूति बन गए। इसी दौरान महात्मा पुलस्त्य ने राजपुरा मंडी के स्थान पर एक बहुत बड़ा तप अनुष्ठान किया, जिससे उनकी लोकप्रियता और बढ़ गयी। यहां के जनसाधारण ने प्रभावित होकर पुन्छ शहर का नाम पुलस्त्य नगर एवं मंडी वाली नदी का नाम पुलस्त्य नदी रख दिया। यह नाम पुन्छ के जन-साधारण में लोकप्रिय होता गया। महात्मा पुलत्स्य तो कुछ देर बाद ब्रह्मलोक के लिए प्रस्थान कर गए। परन्तु उनके नाम की छाप इस इलाके और पुन्छ शहर के साथ सदैव के लिए संबद्ध हो गयी। पुलत्स्य नगर समय की कसौटी पर घिस-घिस पर पुन्छ बना। विभिन्न दौरों में इस शहर के बदलते हुए नाम इस प्रकार हैं—पुलत्स्य नगर→पुलसत→प्रोनस्त→प्रोतन्स→पारन्तिस—प्रोनस—पुन्छ। कश्मीरी में आज भी पुन्छ को प्रोनस कहा जाता है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि—

पुन्छ शहर का इतिहास सदियों पुराना है। आरीना के यात्रा-विवरण के अनुसार सिकन्दर के हमले के समय पुन्छ शहर पर राजा अभिसार का राज्य था, जिसकी भूमिका सिकन्दर और पोरस के युद्ध में निष्पक्ष रही थी।

सिकन्दर के हमले के पश्चात् पुन्छ में जिस स्वतन्त्र सत्ता का इतिहास में वर्णन मिलता है वह सेवा सेन का शासन था। प्रसिद्ध इतिहासकार बैले साहिब को पंजाब में छल्ले की आकृति का एक सिक्का मिला था जिसको इतिहासकार कुषाण वंश के प्रारम्भिक दौर का बतलाते हैं। इस सिक्के पर दार्वाभिसार पुन्छ के राजा सेवा सेन की मुहर लगी हुयी है, जिसकी राजधानी पुन्छ शहर थी।

सातवीं सदी ईसवी में चीनी पर्यटक ह्यूनसांग कश्मीर जाते हुए इस क्षेत्र से

गुज़रा था। उसने पुन्छ शहर को पनअत-सो लिखा है, जो कश्मीर राज्य के अधीन था और उस ज़माने में यहां का अपना कोई राजा नहीं होता था।

'राजतिरंगिनी' (कल्हण) के अनुसार ८५० ई० में पुन्छ पर घोड़ों के प्रसिद्ध व्यापारी राजा नर का शासन था। जिसने पुन्छ के अलग राज्य की स्थापना की। परन्तु ८५८ ई० में जब पुन्छ पर राजा संघराज की सत्ता स्थापित हुई तो उसने पुन्छ की राजधानी लोहरकोट को बनाया, जो पुन्छ शहर से ३१ मील पूर्व में दरा तोश मैदान के ऐन इस ओर कश्मीर को हिंदुस्तान से मिलाने वाले एकमात्र राजमार्ग पर स्थित था और सैनिक दृष्टि से जिसका बड़ा महत्त्व था। इस प्रकार ८५८ ई० से लेकर १५९४ ई० तक पुन्छ शहर इस क्षेत्र की राजधानी न रहा, बल्कि यह दर्जा लोहरकोट को ही प्राप्त रहा। इसके बावजूद पुन्छ का शहर किसी न किसी हालत में कायम-दायम रहा।

'तारीख अक़्वाम पुन्छ' के अनुसार १५९४ ई० में पुन्छ का शासक सिराज-उल-दीन बना। यह राजा उदय सिंह राठौर संस्थापक जोधपुर का पोता था जिसने एक फकीर के आदेश पर इस्लाम स्वीकार किया था और सुर्जन सिंह के स्थान सिराज-उल-दीन नाम धारण कर लिया था। परन्तु राजपूताना में लोगों ने उसका काफिया तंग कर दिया। विवश होकर सिराज-उल-दीन राजस्थान से भाग कर पुन्छ के पहाड़ों में आ बसा। उसने पुन्छ शहर के उत्तर की ओर कहूटा गांव में निवास किया और कहूटा के धनाढ्य जेब चौहान की इकलौती बेटी से शादी करके रहने लगा। इसी दौरान शहज़ादा सलीम अपने पिता अक़बर के साथ कश्मीर जाते हुए कहूटा रुके। यहां सिराज-उल-दीन ने शहज़ादा की बहुत सेवा और आवभगत की। सलीम सिराज-उल-दीन के मेल-मिलाप, सहृदयता और सद्चरित्र से प्रभावित हुआ उसने अपने पिता से सिफारिश करके सिराज-उल-दीन को पुन्छ क्षेत्र के राजा का पद प्रदान किया और पुन्छ के राज्याधिकार का फरमान दिलवा कर उसे पुन्छ का राजा बनवा दिया। राज्याधिकार का फरमान लेकर सिराज-उल-दीन १५९४ ई० को कहूटा से पुन्छ शहर आ गया और यहां से ही सारे क्षेत्र पर शासन करने लग पड़ा। इस प्रकार पुन्छ शहर एक बार फिर राजधानी के तौर पर सामने आया। राजा सिराज-उल-दीन ने १६४६ ई० तक शासन किया।

सिराज-उल-दीन के पश्चात् राजा फतह मुहम्मद खान १६४६ से १७०० ई० राजा अब्दुल रज़ाक खान (१७०० ई० से १७४७ ई०), राजा मुहम्मद जमान खान (१७४७ ई० से १७६० ई०), राजा रुस्तम खान (१७६० ई० से १७८७ ई० तक), राजा शहाज़ खान (१७८७ ई० से १७९२ ई०), राजा खान बहादुर खान (१७९२ ई० से १७९८ ई०), राजा अमीर खान (१७९८ ई० से १८०४ ई०), रूहौल्ला खान (१८०४ से १८१९ ई० तक) ने पुन्छ शहर से क्षेत्र पर शासन किया। मुस्लिम शासन काल में राजा अब्दुल रज़ाक ने पुन्छ किले

की नींव रखी जबकि राजा रुस्तम खान ने इस किले का निर्माण किया जोकि आज भी अपनी जीर्णावस्था में इतिहास का हाल बयान कर रहा है। रुस्तम खान ने अपने समय में पुन्छ शहर का उत्थान किया। यह एक सैकुलर किसम का राजा था जिसके दरबार में हिन्दू और मुसलमानों को बराबर का सम्मान प्राप्त था। इस राजा ने बाहरी देशों से हिंदू व्यापारियों एवं कारीगरों को पुन्छ शहर में बुला कर आबाद किया। अधिकतर हिंदू घराने इस महाराजा के समय में पुन्छ आए थे।

१८१९ ई० में महाराजा रंजीत सिंह ने कश्मीर अभियान के दौरान पुन्छ को भी रौंद डाला और यहां के स्वतन्त्र शासन को उखाड़ फैंका। १८२७ ई० में पुन्छ राज्य महाराज ध्यान सिंह को जागीर के तौर पर मिला। इस प्रकार १८५० ई० तक पुन्छ खालसा दरबार के अधीन रहा। १८१९ ई० से १८५० ई० का समय पुन्छ के इतिहास में 'आप राजी का समय' माना जाता है क्योंकि लाहौर दरबार का पुन्छ क्षेत्र पर स्थायी अधिकार नहीं था, इसलिए यहां के स्वेच्छाचारी और स्वतन्त्र विचार वाले लोगों ने गांव-गांव में अलग-अलग राज्य स्थापित कर लिया था और यहां नित नई लड़ाइयां शुरू हो गईं। परिणाम स्वरूप न केवल पुन्छ शहर की उन्नति पर अंकुश लगा अपितु यह शहर विनाश लीला के कगार पर आ पहुंचा। यही कारण है कि १८३७ ई० में प्रसिद्ध अंग्रेज पर्यटक जनाब जी० टी० विगनो साहिब यहां से गुजरे तो उन्होंने अपने यात्रा लेख 'ट्रैवल इन कश्मीर, लद्दाख एंड अस्कर्दू' में लिखा कि पुन्छ शहर कोई दिलचस्प शहर न था। यह शहर कस्बा राजौरी से छोटा और कोटली से बड़ा था। इस शहर में कोई ऐसी महत्त्वपूर्ण बात न थी जिसको लिपिबद्ध किया जाए। इसलिए विगनी साहिब पुन्छ शहर में रुकने के बजाए सुर्णकोट चले गए थे।

१८५० में यहां डोगरा राज्य की दांगबेल राजा ध्यान सिंह के सबसे छोटे सुपुत्र राजा मोती सिंह ने डाली। वह राजा बन कर जब पुन्छ आए तो यह शहर नष्टप्राय हो चला था। परन्तु आते ही राजा मोती सिंह ने निर्माण का काम शुरू करा दिया। देखते ही देखते किले का नए सिरे से निर्माण हुआ। बाग-ड्योढ़ी बनी। कश्मीर के मुग़ल बागों के ढंग का सा फव्वारा बाग लगाया गया। मंडी हाल, न्यायालय परिसर बना। बग्घी खाना का निर्माण हुआ। फिर बाज़ार का नए सिरे से निर्माण कार्य शुरू हुआ और लोगों को पाएदार मकान बनाने हेतु मुफ्त लकड़ी व ऋण मिलने लगे। इस प्रकार इस शहर ने करवट बदली और पहाड़ों के दामन में एक सुंदर शहर उभर आया। राजा मोती सिंह (१८५० ई० से १८९२ ई०) के उपरांत राजा बलदेव सिंह (१८९२ ई० से १९१८ ई०) राजा सुखदेव सिंह (१९२२ ई० से १९२६ ई०) और राजा जगत देव सिंह (१९२७ ई० से १९४०) के समय तक पुन्छ के निर्माण

एवं उन्नति का दौर चलता रहा। मोती महल, बलदेव महल, शीश महल, रैज़िडैंसी, सुखदेव सिंह अस्पताल, पुन्छ क्लब एवं अन्य सैंकड़ों इमारतों का निर्माण हुआ और यहां पर डोगरा वंश का शासन चलता रहा।

१९४७ ई० में रियास्त पर पाकिस्तानी आक्रमण के पश्चात् पुन्छ के ऐतिहासिक, सामाजिक एवं राजनीतिक स्वरूप को गहरी चोट लगी। यह शहर तीन ओर से युद्ध विराम रेखा से घिर गया। महत्त्वपूर्ण राजमार्गों से कट गया। धन-धान्य से परिपूर्ण स्थायी आबादी के प्रवास के कारण यहां की अर्थ व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा और यह ऐतिहासिक शहर बूढ़ा एवं अपाहिज-सा लगने लगा। परन्तु १९७१ ई० के हादिसों के पश्चात् लोगों का भरोसा फिर बहाल हुआ और यहां निर्माण एवं उन्नति का दौर एक बार फिर प्रारम्भ हुआ। अब पुन्छ का शहर एक बार फिर अपना ऐतिहासिक मूल्य प्राप्त करने की ओर शीघ्रता से आगे बढ़ रहा है।

पुन्छ के महत्त्वपूर्ण पवित्र स्थान—

दशनामी अखाड़ा पुन्छ : यह पवित्र स्थान पुन्छ शहर के ऐन दक्षिण में फव्वारा बाग के उस पार दरिया पुन्छ के दाहिने छोर पर धान और गेहूं के खेतों के बीच में स्थित है। यह स्थान राजा रुस्तम खान के काल में अस्तित्व में आया। कहते हैं राजा रुस्तम खान जो अभी राजा नहीं बना था और पुन्छ राज्य का उत्तराधिकारी था, वह एक दिन इधर से गुज़रा। उस समय यहां जंगल हुआ करता था और दशनामी अखाड़े वाले स्थान पर एक साधु धूनी लगाए बैठा होता था। रुस्तम खान ने साधु को देखा और उसके दर पर उपस्थित हुआ। साधु रुस्तम खान पर प्रसन्न हुआ और दुआ दी कि तुम जल्दी ही पुन्छ के राज्यत्व का कार्यभार संभालोगे। कहते हैं पुन्छ की राजनीतिक व्यवस्था ने ऐसी करवट बदली कि अगले कुछ ही दिनों में रुस्तम खान पुन्छ का राजा बन गया। राजा बनने के उपरान्त रुस्तम खान पुनः साधु के पास उपस्थित हुआ और राजा ने यहां मन्दिर का निर्माण करवाया और साधु को जागीर प्रदान की। उसके पश्चात् इस मंदिर को दशनामी अखाड़ा कहा जाने लगा। डोगरा शासकों के समय में (१८५० ई० से १९४० ई० तक) इस दशनामी अखाड़े के स्वामी को रियास्त पुन्छ का राजगुरु कहा जाता था और पुन्छ के शासकों को इसी स्थान पर राजतिलक दिया जाता था। यहां एक बड़ा हाल है यहां हनुमान जी की प्राचीन मूर्ति स्थापित है। साथ में शिव मन्दिर भी है। यहां रक्षा-बंधन से कुछ दिन पहले छड़ी मुबारिक का जलूस निकलता है। जो स्वामी बुड्ढा अमरनाथ (मंडी) तक जाता है। हर वर्ष वैसाखी के उत्सव पर भी यहां मेला लगता है। आज भी इस स्थान को यहां के धार्मिक जीवन में बड़ी महत्ता प्राप्त है। प्रतिदिन सैंकड़ों की संख्या में श्रद्धालु यहां तशरीफ लाते हैं और अपने मनोरथ पाते हैं। पुन्छ के इतिहास में यह पहला मन्दिर है, जिसका निर्माण

मुस्लिम शासन के दौर में हुआ और मुस्लिम शासकों ने ही, जिसकी देख-रेख की ।

गुरुद्वारा नगाली साहिब पुन्छ—

ऐतिहासिक गुरुद्वारा नगाली साहिब पुन्छ शहर से चार मील पूर्व में नाला दरोंगली के तट पर स्थित है । महाराजा रणजीत सिंह जिन दिनों पुन्छ क्षेत्र में लड़ रहे थे (१८१५ ई०) उन दिनों संत भाई मेला सिंह जी नगाली साहिब के स्थान पर तशरीफ लाए थे । संत जी को आधुनिक नगाली साहिब वाला स्थान भगती एवं जप-तप हेतु अति उपयुक्त लगा था । यहां पर बाद में गुरुद्वारा साहिब का निर्माण भी हो गया । महाराजा रणजीत सिंह को जब पता चला कि यहां माना हुआ संत भक्ति में लीन है तो दर्शन हेतु वह संत जी के पास आए और उपहार पेश किए, परन्तु संत जी ने सब कुछ लौटा दिया । फिर भी महाराजा ने जागीर के तौर पर कुछ गांव दिए । १८८५ विक्रमी में महाराजा गुलाब सिंह जब शमस खान का दमन करने हेतु पुन्छ आए तो नगाली साहिब संत जी के दर्शनों के लिए भी गए और पांच गांव उपहार के तौर पर दिए । संत भाई मेला सिंह जी के पश्चात् संत भाई मना सिंह, १९११ वि० से १९२७ वि० संत भाई मंगल सिंह, १९२७ वि० से १९३४ वि० संत भाई रतन सिंह, १९३४ वि० से १९४६ वि० संत भाई अवतार सिंह, १९४६ वि० से १९४९ वि० सं० भाई रतन सिंह जी सूरी, १९४९ वि० से १९५८ वि० संत भाई मोहर सिंह, १९५८ वि० से १९७६ वि० संत भाई मंगल सिंह जी (दूसरे), १९७६ वि० से २००३ वि० और संत भाई बिचित्तर सिंह जी २००३ वि० से इस समय तक यहां के संत हैं । नगाली साहिब के स्थान पर इस समय तीन मंजिला इमारत निर्मित है । यहां गुरुद्वारा साहिब है । नीचे 'द्रंगली' के किनारे देहरी साहिब निर्मित है । यहां प्रतिदिन लंगर जारी रहता है । बैसाखी वाले दिन यहां पर बहुत बड़ा मेला लगता है । दूर-दूर से संगतें श्रद्धा और निष्ठा के साथ यहां आती हैं । इस मेले को पुन्छ की सामाजिक जिंदगी में राष्ट्रीय महत्ता प्राप्त है, क्योंकि इसमें हिन्दू, मुस्लिम एवं सिख तीनों धर्मों के लोग श्रद्धा से एकत्रित होते हैं और एक ही पंक्ति में बैठ कर लंगर से प्रसाद ग्रहण करते हैं ।

मस्जिद बग्यालां—

इस मस्जिद शरीफ के निर्माण हेतु भूमि जनाब फकीर उल्ला खान बग्याल ने दी थी, जिस के कारण इस मस्जिद का नाम मस्जिद बग्यालां पड़ा । यह मस्जिद पुन्छ शहर के पूर्व में परेड ग्राऊंड के साथ स्थित है । इस मस्जिद का निर्माण १९४७ ई० से बहुत पहले हुआ था परन्तु ९ अप्रैल १९८२ ई० को इस मस्जिद का पुनर्निर्माण मौलाना गुलाम कादर साहिब ने शुरू किया है, जो कि अब भी जारी है । इस मस्जिद के निर्माण पर १२ लाख रुपये लगने का अनुमान है जबकि आठ लाख रुपयों की लागत से दो मंजिला इमारत

का निर्माण हो चुका है। शीघ्र ही मस्जिद शरीफ का नये सिरे से निर्माण कार्य समाप्त हो जाने की आशा है। इस समय मस्जिद के साथ-साथ ज़िया-उल आलम मदरसा भी चलाया जा रहा है यहां दीनी शिक्षा के अतिरिक्त मिडिल तक की शिक्षा का प्रबन्ध भी है। इस समय इस मदरसे में ३५० लड़के मज़हबी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, जिन में से २५० लड़कों के लिए रहने, खाने, इलाज पुस्तकों एवं कपड़ों वगैरह का सारा प्रबन्ध मस्जिद के प्रबन्धक जनाब गुलाम कादिर साहिब चंदा इकट्ठा करके कर रहे हैं।

नज़ाम-उद-दीन की जामा मस्जिद—

यह मस्जिद शहर के ऐन बीच में स्थित है और इस का निर्माण पुन्छ के एक (महामात्य) मियां नज़ाम-उल-दीन ने १८७२ ई० में अपने पूर्वजों के पुण्यार्थ नेक विचार से कराया था।

मस्जिद दत्तू वज़ीरनी पुन्छ—

यह मस्जिद एक आयताकार अहाते में निर्मित कराई गई है। कहा जाता है कि यह मस्जिद दत्तू वजीरनी ने निर्मित कराई थी जोकि राजा बलदेव सिंह के दौर में हुई है। १९४७ ई० से पहले इस मस्जिद में इस्लामिया हाई-स्कूल भी चलाया जाता था। यह मस्जिद शहर के दक्षिण की ओर एक ऊंचे टीले पर निर्मित है। इस मस्जिद के अतिरिक्त पुन्छ में अल्ला पीर का ऐतिहासिक स्मारक भी मिलता है और खानकाह कादरिया गेलानिया भी उल्लेखनीय है।

ऊपर वर्णित धार्मिक स्थानों के अतिरिक्त पुन्छ शहर में डुंगस का कृष्ण मन्दिर जोकि महारानी सिरमौर (राजा मोती सिंह की रानी) खक्खा नाबन का राम मंदिर परेड-ग्राऊंड के तट पर निर्मित लक्ष्मी नारायण मंदिर, **जमेदार कन्हैया** का शिव मंदिर, खोड़ी नाड़ का शिव मंदिर, मियां गुलाब सिंह, पुन्छ का गीता-भवन। गुरु निवास मंदिर पुन्छ, गुरुद्वारा सिंह सभा पुन्छ, गुरुद्वारा परानी पुन्छ, खोड़ी नाड़, परेड-ग्राऊंड, एवं मुहल्ला हस्पताल का गुरुद्वारा भी महत्त्वपूर्ण धार्मिक स्थान हैं यहां श्रद्धालु जाकर जप, तप एवं पूजा-पाठ करते हैं।

पुन्छ शहर के इन मंदिरों के अतिरिक्त स्वामी बुड्ढा अमरनाथ मंडी (पुन्छ से २३ किलोमीटर पूर्व) राम कुंड मैंढर (५५ किलोमीटर दक्षिण) शिव मंदिर बहराम गला, दरगाह पीर छोटे शाह मैंढर, मस्जिद शरीफ सुरनकोट भी महत्त्वपूर्ण धार्मिक स्थान हैं। जो हमारी मिश्रित संस्कृति की पहचान एवं हमारी रंग-बिरंगी संस्कृति के दर्पण हैं।

त्योहार तथा मेले—

पुन्छ में विभिन्न नसलों, धर्मों एवं संप्रदायों के लोग एक साथ रहते हैं। हिन्दू भी हैं, मुस्लिम भी और सिख भी। इनमें कश्मीरी भी हैं, पहाड़ी भी, गुर्जर भी और जाट भी। यह सभी लोग अपनी ज़िंदगी, अपने कल्चर, अपने धर्म,

अपने मेले-त्योहार, बिना किसी भय अथवा संदेह के सदियों से इकट्ठे मनाते चले आ रहे हैं और अपने-अपने दिन-त्योहार बड़ी श्रद्धा, धूम-धाम तथा वैभव से मनाते हैं। जिनमें दूसरे धर्मों के लोग भी सम्मिलित होते हैं। मुसलमानों में ईद-मिलाद-उल-नबी का त्योहार बड़े उत्साह के साथ मनाया जाता है । शहर और आस-पास के गाँवों से हज़ारों की संख्या में लोग 'अल्ला-हू अकबर' के नारे लगाते ईदगाह में एकत्रित होते हैं। फिर पक्तियों में खड़े होकर नमाज़ पढ़ते हैं। नमाज़ के उपरांत हिन्दू-सिख अपने मुस्लिम भाइयों को ईद मुबारक देते हैं। इस दिन शहर में चहल-पहल होती है । ईद-मिलाद-उल-नबी के अतिरिक्त दूसरी ईदें भी बड़े आदर भाव से मनाई जाती हैं।

इस प्रकार सिख ससुदाय से संबंध रखने वाले लोग अपने गुरु साहिबान के जन्म दिन परंपरागत वैभव के साथ मनाते हैं। इस दिन गुरुद्वारों में दीवान लगते हैं। संगतें इकट्ठी होती हैं। गुरु ग्रंथ साहिब का पाठ होता है । शब्द कीर्तन होते हैं। लंगर जारी रहता है। फिर शब्द गाते-गतका और तलवारों के करतब दिखाते हुए धार्मिक जुलूस बाज़ारों से गुजरते हैं । शाम को दीपमाला भी की जाती है।

हिंदुओं में जन्माष्टमी, दीवाली, लोहड़ी और रक्षाबंधन के पर्व बड़े उत्साह के साथ मनाए जाते हैं । रक्षाबंधन पर 'बुड्ढा अमरनाथ' मंडी के स्थान पर एक भारी मेला लगता है। वैसाख का मेला दशनामी अखाड़ा पुन्छ में और चेत की चौदह तारीख को राम कुंड के स्थान पर भी मेले लगते हैं। जन्माअष्टमी पर गीता भवन पुन्छ में एक बड़ा समागम होता है । प्रवचन और भजन होते हैं । झांकियां निकाली जाती हैं फिर कीर्तन करता हुआ धार्मिक जुलूस गीता भवन से निकलता है। सारे शहर को झंडों एवं धार्मिक नारों से युक्त मेहराबों से सजाया जाता है । यह जुलूस डोंगस के कृष्ण मंदिर में जाकर समाप्त होता है। शाम को गीता भवन में आतिशबाज़ी भी होती है । दशहरे के दिन परेड-ग्राऊंड में रावण, मेवनाद और कुंभकरण के बुत बड़े उत्साह के साथ जलाए जाते हैं।

इन धार्मिक त्योहारों के अतिरिक्त कुछ अन्य त्योहार भी पुन्छ क्षेत्र में मनाए जाते हैं—जैसे मेला सखी पीर, उर्स सांई फ़कीर-उल-दीन आदि-आदि ।

रीति-रिवाज—

रीति तथा परंपराएं मानव जीवन के प्रवाह के अंग-संग चला करते हैं । पुन्छ के जन-साधारण के रीति-रिवाज एवं परंपराएं भी जिंदगी की विभिन्न दिशाओं तथा महत्त्वपूर्ण घटनाओं और स्थानों से संबद्ध हैं । एक ओर यह रीति-रिवाज और परंपराएं—मेलों, त्योहारों, भौगोलिक बदलाव और सत-रंगे मौसमों से सम्बद्ध हैं तो दूसरी ओर समाजी त्योहारों, खेतों-खलिहानों एवं पौरुष के चौगिर्द घूमते हैं। आइये इन का विश्लेषण करें।

धार्मिक अनुष्ठान—यह अनुष्ठान जन्म से लेकर शादी-विवाह और फिर मौत तक मनाए जाते हैं। यह रस्में हिन्दू, मुस्लिम और सिख सभी भाई अपने-अपने धर्म और मत के अनुसार मनाते हैं। धार्मिक रस्मों में खास रस्म जन्म के पश्चात् तहमान से उठाना। ख़तना, झंड और जूड़ा करना, सगाई करना। शादी के अवसर पर बुगदर उठाना या पंजा लड़ाना आदि शामिल हैं। इन अवसरों पर रिश्तेदारों और दोस्तों को बुलाया जाता है। गीत गाए जाते हैं। मरासी और भांड मनोविनोद संबंधी क्रीड़ाएं करते हैं। हिंदू, सिखों में राजमाश, दम आलू, रायता, कड़ाह पूरी आदि भोजन पकाया जाता है जबकि मुस्लिम भाई बकरा आदि से पीर की न्याज़ देते हैं। कहीं-कहीं घीऽ, शक्कर का भोज भी दिया जाता है।

इन धार्मिक रस्मों के अतिरिक्त भंडारे भी किये जाते हैं। इनमें हिन्दू, मुस्लिम, सिख मिल कर अल्लाह के नाम पर न्याज़ देते हैं। आमतौर पर ऐसी न्याज़ उस समय दी जाती है जब बारिश न हो, सूखा पड़ जाए या कोई और दैवी घटना घट जाए। जब धान की फसल पक जाती है तो सभी लोग मिलकर धान काटने से पहले बकरे की कुर्बानी देकर न्याज़ देते हैं ताकि उनकी धान की फसल ओलों से बची रहे और पूरी की पूरी घर पहुँच जाए। इस रस्म को 'फलकड़ा' कहा जाता है। इन रस्मों के अतिरिक्त प्रायः मेले भी लगते हैं जो हमारी सांस्कृतिक विरासत के अटूट अंग हैं। ऐसे अवसरों पर ढोल बजते हैं, छिंजें होती हैं। दंगल होते हैं, बुगदर उठाए जाते हैं, बीनियां पकड़ी जाती हैं, भैंसे, मैंढे और मुर्ग लड़ाए जाते हैं फिर अलगोजे की तान पर 'सैफ अलमलूक' गाया जाता है।

आर्थिक दशा—१९४७ ई० की घटनाओं के पश्चात् जब देश का विभाजन हुआ और पुन्छ के भी दो टुकड़े हो गये तो पुन्छ संपर्क के महत्त्वपूर्ण राजमार्गों से कट कर रह गया। तीनों ओर से युद्ध विराम रेखा से घिरा होने के कारण लोगों का हृदय डर और भय ने उचाट कर दिया। यहां का धनाढ्य व्यापारी वर्ग पलायन करके दूसरे शहरों में जा बसा। उधर यह क्षेत्र व्यापारी मंडियों से पिछड़ कर रह गया। इन सियासी एवं भौगोलक स्थितियों के प्रतिकूल प्रभाव यहां की आर्थिक जिंदगी पर पड़ा और लोगों की दशा संकट ग्रस्त होती गई।

परन्तु १९७१ की लड़ाई के पश्चात् जनसाधारण का विश्वास पुनः बहाल हो गया। डर और खौफ के बादल छंट गये और लोग दिल लगाकर अपनी आर्थिक दशा बदलने में जुट गये। दूसरी ओर इस पिछड़े और कटे-फटे क्षेत्र की आर्थिक दुर्दशा के दृष्टिगत प्रजातांत्रिक शासन ने श्रेष्ठतम योजनाएं तैयार करके यहां आर्थिक प्रगति की नींव डाल दी। परन्तु १९७५ ई० में जब सिंगल लाइन एडमनिस्ट्रेशन का प्रचलन हुआ तब से पुन्छ में उन्नति का दौर अति तीव्रता से आरम्भ हो गया। हकूमत ने दिल खोलकर फंड्स दिये जिससे एक ओर क्षेत्र की

उन्नति हुई तो दूसरी ओर जनसाधारण को व्यवसाय उपलब्ध हुआ, जिसका सीधा प्रभाव आर्थिक जिंदगी पर पड़ा और लोगों की दशा बदलने लगी। पिछले बारह साल पुन्छ की आर्थिक उन्नति के उज्जवल साल रहे हैं। अब वह दिन दूर नहीं, जब मील-मील पर स्कूल होगा। गांव-गांव में बिजली होगी और घर-घर में साफ पेय जल उपलब्ध होगा। उधर पुन्छ को श्रीनगर से मिलाने हेतु महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक राजमार्ग मुगल रोड़ पर भी काम बड़ी ज़ोर-शोर से जारी है। इसके पूरे होने से पुन्छ की आर्थिक जिंदगी में क्रांति आने की संभावना है।

लोक-वार्त्ता (लोक कथाएं/लोक गीत) : कहते हैं कि मानव को पत्थर के जमाने से ही कहानियां सुनने का शौक रहा है। उस दौर में लोग अलाव के गिर्द बैठे हुए एक-दूसरे को दिन की घटनाएं किस्सों के रूप में सुनाया करते थे। इस प्रकार इन किस्सों ने लोक-वार्त्ता का रूप धारण किया और सुनने-सुनाने से कहानियां आगे बढ़ने लगीं। दुनिया के हर क्षेत्र की अपनी लोक वार्त्तिक संपदा होती है, जिसमें लोक कथाएं और लोक गीत सम्मिलित होते हैं। पुन्छ का भी अपना लोक साहित्य है। यह लोक साहित्य पूरे क्षेत्र में मोतियों की तरह बिखरा पड़ा है। जिसे यहां का जन-साधारण बड़ी उत्सुकता से गाता और सुनता है। यहां का लोक वाङ्मय भी उतना ही रसीला, पुराना और प्रभावपूर्ण है, जितना कि किसी और क्षेत्र का लोक साहित्य हो सकता हैं। इस लोक-साहित्य में एक ओर जनसाधारण के दुःख-सुख संबंधी बातें, हार-जीत के किस्से, पलायन और मिलन की कथाएं प्यार-मुहब्बत की कहानियां, मानव पर मानव के अधिकार करने की कहानियां तथा अत्याचार के वृत्तांतों की झलक मिलती है। तो दूसरी ओर यहां के जनसाधारण के रस्म-रिवाज, मेले-ठेले, रहन-सहन एवं आर्थिक और सामाजिक दशा के चित्र भी दिखते हैं। इस लोक-साहित्य से पुन्छ की अवामी जिंदगी का पता पूर्ण रूप से लगाया जा सकता है। यह लोक-साहित्य किसी विशेष समुदाय या मत का नहीं, अपितु यहां के जन-साधारण की सांझी संपत्ति है और हमारी संस्कृति की पहचान है।

इस लोक-साहित्य को दो हिस्सों में बांटा जा सकता है—पहला हिस्सा गद्य का है जिसे लोक-कथाएं कहते हैं। इन लोक कथाओं में मानव जीवन की बड़ी गहरी सोच प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत की गई है। इन कहानियों के हजारों विषय हैं। इन में राजे-रानियों के किस्से मिलते हैं। जिन्नों-भूतों की चर्चा आती है। निर्धन जन-साधारण की जिंदगी की घटनाएं हैं। आज की जिंदगी के चित्र भी मिलते हैं। इन कहानियों में मानव पर मानव के अत्याचार, महल और झोंपड़ी की लड़ाई, परालौकिक भाग्यवादी बातें, बड़े मीठे और मनोरंजक ढंग से बयान की गई हैं। कुछ लोक-कहानियां तो ऐसी प्रतीकात्मक शैली में मिलती हैं कि आधुनिक लेखक भी पढ़कर आश्चर्यचकित रह जाता है। इन कहानियों

में मानव को बुराइयों से दूर रहने की शिक्षा, बुरे रस्म-रिवाज के विरुद्ध युद्ध और जातीय भेद-भाव की पृथकता को मिटाने की बातें मिलती हैं। पुन्छ की लोक कहानियों में महत्त्वपूर्ण लोक कहानियाँ डाव नीली (जिस में राजा नीच जाति की लड़की से शादी करके ऊँच-नीच के विरुद्ध विद्रोह करता है) 'भाग्य अपने-अपने, 'दानशमन्द', 'जिद्दल बुड्डी', 'मातरे', 'रब्ब दी आस', 'कंजूस', 'पूंदी राजा', 'साढ़सती' आदि अति प्रसिद्ध हैं। यह सभी लोक-कहानियां पुन्छी भाषा में पीढ़ी दर पीढ़ी चलती आ रही हैं। लोक-कहानियों के पश्चात् लोक-गीत आते हैं। पुन्छ के लोक-गीत भारी संख्या में हैं। यह लोक-गीत पुन्छी, पहाड़ी एवं गोजरी भाषा में मिलते हैं यह लोक-गीत ऐसी मीठी और सुरीली धुनों में गाये जाते हैं कि लोग सुध-बुध भूल कर इनका मज़ा लेते हैं। इन लोक-गीतों में यहां के रस्म-रिवाज़ रहन-सहन, हास्य-व्यंग्य, मुहब्बत, प्रेम, दुःख-सुख आदि के विषय होते हैं। वास्तव में यह लोक-गीत यहां के जन साधारण के दिल की आवाज होते हैं। पुन्छ के लोक-गीतों में चन्न सबसे अधिक लोकप्रिय लोक-गीत हैं। इसके अतिरिक्त कैंची, ढोल, सपाही, बालू महिया, बार 'शमस खान', बार 'नूरा चौधरी', बोलियां, सिठनियां, घोड़ियां, बैत सिहर्फियां, बारां माह् आदि उल्लेखनीय लोक-गीत हैं। इनके अतिरिक्त शादी-विवाह के गीत भी यहां के अपने लोकगीत हैं। पेश हैं चन्न गीत के दो पद :—

चन्न म्हाड़ा चढ़ेआ ते जाई लग्गा पलंदरी।
चिट्टे-चिट्टे कप्पड़े ते दाग सीनै अंदरी ।

(मेरा चाँद पलंदरी की ऊंची चोटियों से बाहर निकल आया है । चाँद की चाँदनी में मेरे कपड़े तो सफेद दिखाई दे रहे हैं, परन्तु अलगाव वाला वह दाग़ जो मेरे हृदय के भीतर है वह किसी को नहीं दिखता ।)

चन्न म्हाड़ा बनां बिच, बोलनी ऐ कागनी ।
सुखां आली सुत्ती नीं ते दुखा आली जागनी ।।

(मेरे चाँद देख जंगल में कागनी बोल रही है। इस अंधेरी रात में जिन के प्रियवर साथ हैं, आराम से सोई हुई हैं परन्तु जिनको वियोग ने आ घेरा है, वह अभी तक जाग रही हैं।)

कैंची गीत में लड़की जंगल में पशु चराते हुए प्रेमी के वियोग में गीत गाती है। पेश है इस गीत का एक शेऽर :—

दरशी ने बनां बिच कप्पनी आं दस्ते ।
गेआ मेरा मुन्शी ते भुल्ली गे रस्ते ।

(दरशी के जंगल में दस्ते काट रही हूँ। मेरा प्रेमी 'मुन्शी' मुझ से दूर है, इसलिए मैं उसकी याद में घर का रस्ता भी भूल गई हूँ।)

इसके अतिरिक्त खेत-खलिहानों में काम करते समय भी बड़े सुंदर लोक-

गीत गाए जाते हैं । इस प्रकार जंगल से शहतीर लाते समय भी गीत गाया जाता है । पेश है इस गीत से एक वंद—

अल्ला बेली : अली अल्ला जी ।
छिक्को गेल्ली : अली अल्ला जी ।
इक्को हेली : अली अल्ला जी ।
लाओ छंडां : अली अल्ला जी ।
छिक्को तंदां : अली अल्ला जी ।
टप्पो कंधां : अली अल्ला जी ।
जोर लगाऽ के : अली अल्ला जी ।
जान लड़ाऽ के : अली अल्ला जी ।
हत्थ बधाऽ के : अली अल्ला जी ।

(आप का अल्ला सरंक्षक है । इस शहतीर को एक ही जोर से खींचो । फुर्ती के साथ रस्सों को खींचो और ऊंची दीवारों को ज़ोर लगा के एक ही झटके में फांद जाओ । आप का अल्लाह संरक्षक हो ।)

यद्यपि 'सैफ अल मलूक' लोक साहित्य के वर्ग में नहीं आता परन्तु पुन्छ के जन-साधारण में 'सैफ अल-मलूक' से अधिक लोक-प्रिय कोई भी गीत नहीं है । कहते हैं कि अभी 'सैफ-अल-मलूक' लिखा ही जा रहा था कि मुंहों-मुंह इस के शेऽर पुन्छ के जन-साधारण में लोक प्रिय हो गये थे । यहां के अशिक्षित गांव-वासी नहीं जानते कि 'सैफ अल मलूक' किसने और कब रचा है । वह तो केवल ईश्वर-भक्ति में मस्त इन शेऽरों को कंठस्थ किये होते हैं । जब भी कभी किसी ग्रामीण को कोई लोक-गीत सुनाने के लिए कहा जाए तो वह कानों पर हाथ रखकर ऊंची परन्तु गंभीर स्वर और रसीली धुन में जो गीत आरंभ करेगा वह वास्तव में सैफ अल मलूक का ही कोई शेऽर होगा । इस प्रकार पुन्छ की सांस्कृतिक जिंदगी और पुन्छी प्हाड़ी भाषा में 'सैल-अल-मलूक' को वही स्थान प्राप्त है जो उर्दू में गालिब की शायरी को प्राप्त है । इसलिए मैं इस समीक्षा की समाप्ति भी 'सैफ अल मलूक' के इन शेऽरों पर करता हूं ।

बागां ने बिच बुलबुल बोले कस्सियां बोलन पानी ।
जिनां साढ़े सज्जन बछोड़े सबर उनां दी जानी ।

बागों से बुलबुल की आवाज़ आ रही है और झरनों से पानी की आवाज़, परन्तु मेरे प्रिय की आवाज कहीं नहीं जिसने मेरे साजन को मुझ से दूर किया, उस पर मेरी आह पड़े ।

दिल मिले तां दोस्ती करिये मन मिले तां मेला ।
संगत मिले तां संगत करिये नेईं तां भला अकेला ।

(दिल मिले तो दोस्ती करें मन मिले तो मौज मेला हो जाए । अपनी पसंद का साथ मिले तो संगत करें नहीं तो अकेले ही भले हैं।)

बाग ब्हारां ते गुलजारां बिन जारां किस कारी,
जार मिलन दुख दूर हजारां शुकर पड़ां लक्ख वारी ।

(बाग भी है। ब्हार भी है। और चारों ओर फूल खिले हुए हैं, परन्तु मेरा प्रेमी मेरे निकट नहीं । इसलिए मेरे किस काम के। यदि प्रेमी से मिलन हो जाए तो मेरे सभी दुःख दूर हो जाएंगे और मैं अल्लाह का लाख-लाख शुक्र करूंगा। □

रामनगर : एक सांस्कृतिक सर्वेक्षण

□ प्रकाश 'प्रेमी'

'जम्मू' नगर जम्मू-कश्मीर प्रदेश की सर्दियों की राजधानी है। इसी नगर से पूर्व की ओर ऊधमपुर जिले में रामनगर तहसील है। जम्मू से यह कस्बा एक सौ तीन किलोमीटर है और ऊधमपुर से इसका फासला ३८ किलोमीटर है। धार-ऊधमपुर राजमार्ग से एक सड़क पूर्व की ओर रामनगर को जाती है।

यह क्षेत्र विस्तृत क्षेत्र है। शिवालिक की सुरम्य पहाड़ियों के बीच इसकी स्थिति इस प्रदेश को और भी सुन्दर बनाती है और यह क्षेत्र देवों-गन्धर्वों और नागों का एक क्रीड़ास्थल लगता है। सब्ज़ सोने से यह क्षेत्र भरपूर है। एक ओर कंढी प्रदेश की चिल-चिलाती धूप है तो दूसरी ओर ऊंचे सुहावने पर्वतों पर चील, देवदारु, कायल, और बुदलु के घने वनों से सुसज्जित क्षेत्र मंद-मंद मधुर, प्राणदायनी समीर, ठंडे चश्मे, आबशार और नदी नाले इसकी शोभा के लिये सोने पर सुहागे का काम करते हैं। पुराणों में वर्णित नन्दन-कानन सम्भवतः यही रहा होगा।

पूर्व की ओर बिलावर, उत्तर में भद्रवाह, उत्तर-पश्चिम में चनैहनी, पश्चिम में ऊधमपुर, दक्षिण-पश्चिम की ओर जम्मू तथा दक्षिण की ओर साम्बा के इलाके पड़ते हैं।

महाराजा गुलाब-सिंह के राजतिलक से पहले यह एक छोटा-सा राज्य था जिस पर बन्द्राहल राजपूतों का शासन था। कुछ बजुर्ग लोग इसे 'आपराजी' का दौर कहते हैं।

किम्वदन्तियां—

किसी भी क्षेत्र के विषय में कई किम्वदन्तियां जुड़ी रहती हैं। यद्यपि किम्वदन्तियों के ईंट-गारे से इतिहास का महल खड़ा तो नहीं किया जा सकता

तो भी इतिहास को खोजने में ये किम्वदन्तियां सहायक सिद्ध होती हैं । लोगों के रहन-सहन, जीवन-स्तर, आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक स्थितियों और इनमें घिरे जन-जीवन पर काफी प्रकाश डालती हैं ये किम्वदन्तियां । इसकी पुष्टि इस किम्वदन्ती से किस प्रकार होती है ।

सामना-वंज बन्द्राह्लैं दा बन्ना,
मारे मनकोटिये रोन्दियां रन्नां,
देआं मेरा गुड्डनूं तल्ड पुट्टी खन्नां ।

यह बहु-प्रचलित किम्वदन्ती है और सिद्ध करती है कि "सामना-वंज दक्षिण और दक्षिण-पूर्व की ओर बन्द्राहल-राज्य की सीमा थी । 'मनकोटिये' राजपूत, जिनकी राजधानी रामकोट थी, के साथ बन्द्राहलों की कड़ी टक्कर थी । बन्द्राहलों ने मनकोटियों को मार भगाया, जिनकी औरतों के सुहाग मिट गए । एक आम आदमी पेट भरने के लिये अनाज प्राप्त नहीं कर सकता था । शायद युद्ध के दौरान खड़ी फसलों को नष्ट कर दिया गया । इसीलिये कुदाली मांग रहा है ताकि वह "तल्ड" धरती से खोद कर लाए और अपना पेट भर सके । "तल्ड" या "तरड़" एक विशेष बेल की जड़ है, जो बहुत स्वादिष्ट मूल है और इस पट्टी में विशेषकर सुमरता और गढ़-सामनबंज के निचले हिस्से में बहुत पाया जाता है ।

प्रमुख धार्मिक स्थान—

पूरे संसार में धर्मोपासना की डोर से मनुष्य बन्धा हुआ है । हमारे पर्वतीय क्षेत्रों में तो यह डोर बहुत ही मजबूत है । घर-घर में एक छोटा-सा मन्दिर है । मुख्यतः मैदानी इलाकों में नृसिंह भगवान की पूजा होती है । नृसिंह भगवान के कई मन्दिर हैं । इनमें जो बहुत मशहूर हैं उनका विवरण इस प्रकार है । राम-नगर कस्बे में नृसिंह भगवान का मशहूर और प्राचीन मन्दिर है । इस मन्दिर में नृसिंह भगवान के चमत्कार के विषय में कई कहावतें और किम्वदन्तियां प्रचलित हैं । कहा जाता है कि एक बार पुजारी ने गुड़ के धोखे से अफीम का नैवेद्य चढ़ाया और फिर जब पता चला तो उसने सोचा अब न तो इसे प्रसाद के तौर पर लोगों को दिया जा सकता है और न ही फैंका जा सकता है क्योंकि इससे भगवान का अपमान होगा । अतः उसने पूरे का पूरा अफीम जो "पाव-कच्चा" यानि एक एक सौ पच्चीस ग्राम के करीब था खा लिया और सो गया । दूसरे दिन पुजारी उठा तो ठीक-ठाक था किन्तु नृसिह जी की मूर्ति फट चुकी थी । अब भी इस मूर्ति को स्नानोपरान्त 'घी' लगाया जाता है । दूसरी बहुचर्चित किम्वदन्ती इस मन्दिर के विषय में यूं है कि राजा सुचेत सिंह ने रामनगर के तालाब में जिसे 'रानी-तालाब' कहा जाता है 'न्हापे' का फूल देखा । उसने पुजारी से कहा कि यह फूल भगवान पर वह स्वयं चढ़ाएगा, किन्तु पुजारी ने कहा कि यह हक तो उसका है, अतः फूल वह चढ़ाएगा । अतः पुजारी ने दूसरे

दिन भोर से पहले ही फूल तोड़ा और चढ़ा दिया । राजा को इस बात पर बड़ा क्रोध आया । उसने पुजारी को बुरा-भला कहा और मन्दिर से निकल जाने को कहा । पुजारी ने नृसिंह की चौकी उठाई और अपने गांव "बढोल" की तरफ चला गया । जाते-जाते यह कहता गया कि अब भगवान नृसिंह को इस मन्दिर में तभी लाऊंगा जब यह राजा मरेगा । बात एक आध दिन चली और आई गई हो गई । इसी बीच सुचेत सिंह को लाहौर दरबार से पत्र आया और उसे जाना पड़ा । वहां तख्त-ताज की लड़ाई तो चल ही रही थी । इसी लड़ाई में सुचेत सिंह मारा गया । रानियों और दासियों ने सती होने से पूर्व पुजारी को सन्देसा भेजा कि उसका मनोरथ तो अब पूरा हो गया है अत: वह भगवान को मन्दिर में ले आए । यह सारी घटना आठ-दस दिन के अन्दर ही घटी, अत: इसे नृसिंह जी का अपूर्व चमत्कार माना जाने लगा ।

नृसिंह भगवान के और मुख्य मंदिर बरम्हीन, बढोल, विडला, जनसाल और रामनगर के पास ही गुरलांग नाम के स्थान पर हैं । इनमें जनसाल का मन्दिर सब से पुराना है । इसके अतिरिक्त नृसिंह भगवान के दो और प्राचीन मन्दिर हैं । एक रामनगर से चौदह किलोमीटर दूर कग्होट गांव में है और दूसरा मन्दिर घोगघड़मढ़ गांव में है । सभी नृसिंह मन्दिरों के पुजारी ब्राह्मण जाति से संबंध रखते हैं किन्तु कग्होट के मन्दिर के पुजारी हरिजन (भगत) हैं । इसके इलावा "धनवालत गांव में भी नृसिंह का बहुत बड़ा और प्राचीन मन्दिर है ।

पूरे इलाके में शक्ति की पूजा भी बड़ी श्रद्धा के साथ की जाती है । घर-घर में लोहे और चान्दी के त्रिशूल रखे होते हैं । कहीं-कहीं इनके साथ पत्थर की मूर्तियां भी हैं । ये सभी चामुंडा के मन्दिर हैं । चामुण्डा को "माता चौंडा" या "चौंड" के नाम से पूजा जाता है । "सत्या" गांव में जलन्धरा देवी का बहुत ही प्राचीन मन्दिर है । बसन्तगढ़ से पश्चिम की ओर पहाड़ी इलाके में "ध्रोब्बड़ी" नामक मोहड़े में चामुण्डा का मशहूर स्थान है । इसी प्रकार का एक मन्दिर "शिवगली" में भी है । ध्रोब्बड़ी में शरद नवरात्रों के पांचवें दिन बहुत बड़ा मेला होता है और दूर-दूर से श्रद्धालु यहां आते हैं ।

रामनगर के दक्षिण-पश्चिम की ओर पनगर नाम के गांव में माता पिंगला का मन्दिर है जहां हर साल हजारों श्रद्धालु दर्शनों के लिये आते हैं । यह बहुत बड़ी गुफा है जहां अन्दर पिंगला माता की पिण्डी है । इसकी मान्यता जहां इतनी ही है जितनी कि माता वैष्णों की है । इसको आदि-शक्ति के रूप में ही पूजा जाता है । इसके इलावा रामनगर के दक्षिण में ऊंची चोटी पर माता चौंतरा (चामुण्डा) का प्रसिद्ध देवी स्थान है । जहां सैंकड़ों श्रद्धालु पूजा करने जाते हैं ।

पूरे पर्वतीय प्रदेश में बासुकी नाग की पूजा बड़े उत्साह और श्रद्धा के साथ की जाती है । नागपूजा का यूं तो पूरे डुग्गर में रिवाज है और हर चश्मे और

बावली पर नागमूर्ति मिलती है। बारिश न होने की सूरत में नाग की मूर्ति को गीली मिट्टी के साथ ढक दिया जाता है और बारिश होने पर ही इस मिट्टी को धोया जाता है। रामनगर की पुरानी बावलियां अपनी तरह के विशेष मन्दिर हैं। बावलियों की दीवारों पर अनेक देवताओं की मूर्तियां सजी हैं। ये सभी पत्थर की मूर्तियां हैं। वासुकी नाग का सबसे मशहूर मन्दर मजोड़ी गांव के पास गन्ध गांव में है। ये दोनों ही मन्दिर वासुकी और उसके परिवार के हैं। वासुकी मन्दिरों में वासुकी नाग की मूर्तियां पत्थर की नहीं अपितु लकड़ी की हैं। बसन्तगढ़ में भी सैकड़ों वर्ष पुराना वासुकी नाग का मन्दिर है। गन्ध नाग स्थान पर कार्तिक मास की पूर्णिमा के तीसरे दिन बहुत बड़ा मेला होता है। पूरे रामनगर क्षेत्र में यह मेला बहुत मशहूर है। यहां पर इस दिन खास चीज़ जो देखने योग्य है वह है लोक नाच "कुड्ढ" जिसमें औरतें और मर्द सभी वासुकी को प्रसन्न करने के लिये इकट्ठे नाचते हैं। इन मेलों में हिन्दू और मुसलमान सभी शामिल होते हैं। और नागपूजा मुसलमान भी करते हैं। शिवपूजा भी बहुत प्रचलित है शिव के मशहूर मन्दिर रामनगर में दो हैं और एक डुड्डू के पास "स्योगली" (शिवगली) में है। रामनगर की "झिगलीचौरी" का शिव मन्दिर सभी मन्दिरों से पुराना है। इसके इलावा रामनगर में तीन बड़े मन्दिर हैं। एक दुर्गा का है जो नया ही बना है। "राधा-कृष्ण" और "कुडियारों का मन्दिर" एक डेढ़ शताब्दी पुराने हैं।

रामनगर क्षेत्र में पहाड़ी इलाकों में मुसलमान आबादी भी बहुत है। जहां-जहां मुसलमान आबादी है वहां हर जगह मस्जिदें भी हैं। रामनगर में एक पुरानी मस्जिद है। इसके इलावा रानी तालाब के किनारे पीर वलीशाह की खानकाह भी है। इसके इलावा बसन्तगढ़, खनेड़, डुड्डू, लाटी और 'खू'न' में भी मस्जिद है। जगह-जगह पीरों के स्थान हैं जिनको हिन्दू और मुसलमान सभी श्रद्धा की निगाह से देखते हैं और मन्नते मानते हैं। पूरे क्षेत्र में दंगल पीरों के नाम पर ही होते हैं, और बहुधा पीरों की पीरगाहों पर ही होते हैं।

इसके अतिरिक्त रामनगर के पास ही एक मन्दिर है जो 'कुटिया' के नाम से प्रसिद्ध है, वास्तव में यह स्वामी जी द्वारा बनाई गई थी और यहाँ पर ही उनकी समाधि भी है। एक और मन्दिर बसन्तगढ़ सड़क के दाईं ओर है जो 'शिवलोक' नाम से प्रसिद्ध है। स्वामी श्री बलराज जी भारती शिवगली में रहते थे जहां एक-एक सप्ताह तक वे बर्फ में तपस्या लीन रहते थे। शिवगली छोड़ने के बाद वे रामनगर में चले गये, वहां ही उन्होंने अपना आश्रम बनाया जो शिवलोक के नाम से विख्यात है। उनके हज़ारों की तादाद में श्रद्धालु थे। अब भी उनकी अटल समाधि के दर्शन के लिये दूर-दूर से बुद्धि-जीवी और दूसरे सभी वर्गों के लोग आते हैं। स्वामी जो आडम्बरों से परे और सच्चे देशभक्त भी थे यही कारण है कि हर वर्ग में उनकी मान्यता होती थी।

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं कि इस क्षेत्र में स्थान-स्थान पर इतने मन्दिर हैं कि इनकी गिनती कर पाना असम्भव तो नहीं किन्तु कठिन अवश्य है। कुछ और मन्दिर भी ऐसे हैं जिनका सम्बन्ध वासुकी नाग परिवार से है। इन में चौकी-जन्द्रोह्ड़ गांव में "बावा भुरदार" माढ़ता गांव में "बाबा तम्र्यान" और "तरगां" मुल्हका के पास "सुरगल" नाग का बहुत बड़ा मन्दिर है।

"बाबा सिद्ध-गोरिया" "कालीवीर" और "गुग्गा-बीर" के स्थान भी बहुत हैं। इनके नाम पर "गुगैह्ल" भी होती है। जहां गांव के लोग इकट्ठे होते हैं और इस स्थान से यात्रा आरम्भ होती है। पूरे गांव में मयूर-पंखों से बने 'मोर-मुट्ठे' लेकर घर-घर में "गुग्गा वीर" "राजा मण्डलीक" (मल्डीक) को प्रसन्न करने के लिये नाच किया जाता है।

एक मन्दिर का ज़िक्र किये बिना बात अधूरी रह जाती है। यह मन्दिर काली मां का है जो घोरड़ी गांव में स्थित है। इस स्थान का नाम जनसी और माता को "जनसी माता" के नाम से जाना जाता है। यह बहुत पुराना मन्दिर था लेकिन २००७ में बहुत बारिशों के कारण यह जगह बह गई थी और मन्दिर भी गिर गया था। इसका नव-निर्माण किया गया है। इसी प्रकार का दूसरा मन्दिर मनसा देवी में है। इन दोनों मन्दिरों के पुजारी गुसाईं-ब्राह्मण हैं।

पर्व त्योहार—

मनुष्य जहां भी जिस हालत में रहता है, उन विषम परिस्थितियों से जूझने के लिये उसकी कुछ आस्थाएं बन जाती हैं। क्षणिक आनन्द की अनुभूति के लिये भी उसका मन लालायित हो जाता है। इस सुख की अनुभूति के लिये वह अलग-अलग पर्व-त्योहारों को मनाता है। कुछ त्योहार उसकी धार्मिक प्रवृत्तियों के प्रतीक होते हैं और यह किसी पौराणिक पुरुष और पौराणिक घटनाओं से जुड़े होते हैं। अन्य त्योहारों का सम्बन्ध उसके निजी या सामाजिक जीवन से होता है।

इस क्षेत्र के मुख्य पर्व-त्योहार सभी उत्तरी भारत में मनाए जाने वाले त्योहार हैं। वैशाखी का त्योहार बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। ऊधमपुर की वैशाखी का मेला तो दूर-दूर तक मशहूर था। यह वैशाख मास की पहली, दूसरी तथा तीसरी तारीख को होता था। रामनगर कस्बे में यह तीन दिन रहता था। पहली को लोग मेला देखने ऊधमपुर जाते थे। दो तारीख को रामनगर में ही "नौजी" के स्थान पर मेला होता था। नौजी में बहुत पुराना मन्दिर भी है जिसका ज़िक्र हम ऊपर करना भूल गए हैं। यह स्व० भगवत्प्रसाद साठे का जन्म स्थान भी है। तीन तारीख का मेला डालसर में (रामनगर से कोई दो मील पश्चिम की ओर) होता था और चार तारीख को रामनगर में दंगल और मेला होता था। वैशाखी के दो और बड़े मेले रामनगर क्षेत्र में पहली

वैशाख को ही "घोरड़ी" और बरम्हीन में होते हैं। आहिस्ता आहिस्ता ये मेले अब अपनी पुरानी रौनक खोते जा रहे हैं।

इसके बाद निर्जला एकादशी और आषाढ़ मास का पहला दिन धर्म-दिन (धमदें या धर्म-ध्याड़ा) के त्योहार आते हैं। धर्म-दिन पर बहन-बेटियों को लोग विशेष उपहार देते हैं। आषाढ़ ही की तेरह तारीख को गोल मेला भी होता है जो ऊधमपुर शहर के दक्षिण में होता है।

वर्षा ऋतु के त्योहारों में मुख्य त्योहार कृष्ण जन्माष्टमी है। सभी नृसिंह मन्दिरों में इस दिन विशेष उत्सव होते हैं और पूरी उत्तरी भारत की तरह ही कृष्ण जन्माष्टमी विशेष हर्षोल्लास के साथ मनाई जाती है। इसी ऋतु के नारी त्योहार चन्दन षष्ठी और बच्छ द्वाऽ (गोवत्स द्वादशी) हैं। इन में नारियां अपने परिवार के सभी जीवों की दीर्घायु और धन-धान्य और समृद्धि की कामना करती हैं। जन्माष्टमी के दूसरे दिन गुग्गा-नवमी को गांवों में गुग्गा पूजा होती है और गुग्गा-बीर के स्थान पर विशेष पूजा होती है। रक्षा-बन्धन श्रावण पूर्णिमा को आता है। यह भी एक प्रसिद्ध त्योहार है।

शरद् नवरात्रों में शक्तिपूजा का रिवाज भी बहु-प्रचलित है। किन्तु यह नगरोटों और कस्बों में अधिक प्रचलित है। अब गांवों में भी विशेष हर्षोल्लास से शक्ति-पूजा प्रचलित है। इन्हीं दिनों गांव-गांव में रामलीला का रिवाज भी दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। इसके उपरान्त दशहरा आता है। पूरे डुग्गर क्षेत्र की तरह इसे बड़ी शान से मनाते हैं। बाद में हरतालिका तृतीया और करवाचौथ के त्योहार आते हैं। इन का सम्बन्ध नारी-वर्ग से है। करवा चौथ तो नारी-समाज का सबसे प्रसिद्ध त्योहार है। इस दिन नारियां अपने अटल-सुहाग की कामना करती हैं। सारा दिन व्रत रखकर रात को गणेश पूजा के उपरान्त ही कुछ खाती पीती हैं और यह फलाहार की सूरत में ही होता है। कार्तिक मास में टिक्का या भैया-दूज का त्योहार आता है। इस दिन बहिनें कुंकुम आदि का तिलक भाईयों के माथे लगाकर उनकी दीर्घायु की कामना करती हैं। पूरे क्षेत्र में कार्तिक मास को "धर्मी-महीना" के रूप में मनाया जाता है। पूरे मास में बहिनें अपने भाइयों के लिये दावतों का आयोजन करती हैं। घर से ही राशन ले जाकर मायके में भाइयों को दावत देती हैं। कार्तिक में ही नृसिंह-द्वारों और मन्दिरों में अन्नकूट अपनी विशेष महत्ता रखता है। इस दिन बहुत बड़े यज्ञ भी होते हैं।

इसी मास में अहोई अष्टमी का त्योहार भी मनाया जाता है। अहोई-पूजा का खास रिवाज है। इस दिन लस्सी डालकर "चावल की कढ़ी" बनाने का खास रिवाज है। इसके साथ ही एक खास तरह के घी-तेल में पकी मीठी रोटियों का अहोई को भोग लगाया जाता है। इन विशेष रोटियों को बनाने की खास विधि है और इन रोटियों को "सुट्टु-भुट्टु" कहा जाता है। शरद् ऋतु

में ही तुलसी एकादशी आती है जिसको साधारण लोग "क्यांरिया बर्त" कहते है। यह तुलसी विवाह का दिन होता है। घरों के बाहिर बनी तुलसी की क्यारी को बड़े अनूठे ढंग से सजाया जाता है। उसकी पूजा की जाती है।

शरद् ऋतु का सब से मशहूर त्योहार दीपावली है। यह दिन तो पूरे भारत में विशेष महत्त्व रखता है। गांवों और कसबों में इस दिन दीपावली की जाती है। घर-घर में पूजा होती है। कुछ लोग इसे दूसरे ढंग से भी मनाते हैं और अपनी बहुत सी जमा-पूंजी भी किस्मत-आज़माई करते हुए लुटा बैठते हैं। लक्ष्मी-पूजा के लिये यह एक मख़सूस दिन है।

पौष मास की तेरह तारीख को रथ-यात्रा का विशेष त्यौहार होता है। इसी दिन रामनगर में गुरलांग के नृसिंह मन्दिर के बाहिर बहुत बड़ा मेला होता है जो "रथ-मेला" के नाम से प्रसिद्ध है।

पौष मासान्त को लोह्ड़ी का त्यौहार आता है। बच्चे इस त्यौहार को खास चाव से मनाते हैं। कस्बे और नगरोटों में लड़के "छज्जे" और 'भंवरे' लेकर लोक गीत गाते हुए हर मुहल्ले में बड़ों से पैसे मांगते हैं। ये गीत भी विशेष गीत होते हैं। लड़कियां भी "तरचौली" मांगती हैं। इनके भी गीत विशेष लोक-गीत होते हैं जो केवल इसी अवसर पर गाए जाते हैं। कुछ बोल यूं हैं :—

छज्जे का गीत—

बालक—घुंडु घुंडुआ
सभी—कांटे
बालक—ब्रैह्ली घुंडुआ
सभी—कांटे
बालक—गौ गुआची
सभी—कांटे
बालक—बच्छा लभ्भा
सभी—कांटे···आदि
इसी तरह दूसरा गीत है—
सुन्दर-मुन्दरिये हो
तेरा कौन बचारा हो
दुल्हा भट्ठी वाला हो
दुल्है धी ब्याही हो
नौ मन शक्कर लाई हो
कुड़ी दै खीस्सै पाई हो
कुड़ी दा खीस्सा फट्टेआ हो

जिमींदारें लुट्टेआ हो
जिमींदार सदाए हो
गिनी गिनी पौल्ले लाए हो।

लड़कियां त्रचौली (तिल-चावल और गुड़ का मिश्रण) मांगते हुए यह गीत गाती हैं :—

आ कुड़े तरचौलिये
गीगां वालिये,
तां गीगां जम्मेआं
तां गुड़ भन्नेआ
तां गुड़े दियां रोड़ियां
तां मुच्छ मरोड़ियां······

रात को गांवों में हरिण चढ़ाए जाते हैं। इस में एक आदमी हरिण बनता है, एक साधु और कुछ सखियां होती हैं। यह नाच और नाटक की पुरानी प्रथा है। जिस घर में कोई खुशी की बात हो तो वहां से काफी पैसे बटोरते हैं। ये सभी पैसे और दूसरी वस्तुओं को इकट्ठा करके बेच देते हैं और इस रकम से कोई बरतन आदि लिये जाते हैं जो पूरे गांव में धर्मार्थ काम के लिये प्रयोग में लाए जाते हैं।

फाल्गुण पूर्णिमा को होली का प्रसिद्ध त्योहार आता है जिसको हर जगह बड़ी खुशी से मनाया जाता है। इसके बाद चैत चौदश का प्रसिद्ध त्योहार आता है किन्तु इसकी अब पहले जैसी महत्ता नहीं है।

चैत्र मास में पहाड़ी इलाके में औरतों का सौभाग्य का प्रसिद्ध त्योहार आता है। यह चैत्र के तीसरे सोमवार को आता है। पहला सोमवार चिड़ियों का, दूसरा कुड़ियों (कन्याओं) का और तीसरा सौभाग्यवती औरतों का होता है। इस त्योहार के आने से पूर्व ही साढ़ी (जंगली खुबानी) के फल की गुठलियों से गिरी निकाल कर दो-तीन दिन पानी में भिगोकर रख देती हैं। उनका छिलका निकाल कर सुखाया जाता है। तीसरे सोमवार को इनमें घी-शक्कर और दूसरे खुश्क मेवे मिलाकर विशेष खाद्य-पदार्थ बनाया जाता है। सभी औरतें इकट्ठी होकर पनघट पर जाती हैं, वहां छोटा-सा पत्थर लेकर उसे नहलाती और उसकी पूजा करती हैं और अटल सुहाग की कामना करती हैं।

यह हैं इस क्षेत्र के मुख्य त्योहार इसके इलावा और जो त्योहार हैं उनमें नागपंचमी, अनन्त-चौदश, गोपाल-अष्टमी और वसन्त पंचमी आदि हैं, जिनके मनाने की प्रथा कुछ खास लोगों में ही है। मुस्लिम जनता में हर ईद बड़े हर्षोल्लास से मनाई जाती है। इन त्योहारों में भाईचारे के दृश्य भी देखने को मिलते हैं।

रीति-रिवाज—अलग-अलग खित्तों में बसने वाले लोगों में रीति-रिवाज भी अलग-अलग होते हैं। ये सभी वातावरण, ऐतिहासिकता, भौगोलिक-परिस्थितियों और सांस्कृतिक विरसे से जुड़े रहते हैं। विभिन्न परिस्थितियों में बहुत से रीति-रिवाज बदलते भी रहते हैं। कभी दूसरे लोगों से जुड़ने पर तो कभी आर्थिक और सामाजिक हालात बदलने पर ये रीति-रिवाज भी बदल जाते हैं। जीवन के साथ इनका चोली-दामन का साथ होता है।

इस क्षेत्र के रीति-रिवाज पूरे डुग्गर प्रदेश के रीति-रिवाजों से मिलते हैं परन्तु पर्वतीय क्षेत्रों में कुछ भिन्न रीति-रिवाज भी देखने को मिलते हैं। पुराने वक्तों में बालक के जन्म के समय बहुत खुशियां मनाई जाती थीं लेकिन लड़की के पैदा होने पर परिवार भर के मुंह लटक जाते थे। विशेषकर राजपूतों में तो ऐसा ही था। कहीं-कहीं तो लड़कियों को पैदा होते ही दफना दिया जाता था किन्तु धीरे-धीरे यह कुप्रथा पूर्णतया लुप्त हो गई है। अब तो लोग इस तरह की बात मन में लाना भी महापाप मानते हैं। बालक के पैदा होने पर अत्यधिक खुशी अब भी मनाई जाती है। गीत और सौर-गीतों का समां बंध जाता है। बड़े घरानों में विशेष दावतों का आयोजन प्रसूति के इक्कीसवें दिन होता है। दूर-दूर से गीत गायकों की जोड़ियां मंगवाई जाती हैं और गीतों के मुकाबले होते हैं। प्रसूति के बीच ग्यारह दिन तक उस औरत को केवल काढ़ा पिलाया जाता है जिसमें सभी पौष्टिक वस्तुएं मिली रहती हैं। मुहल्ले में भी यह काढ़ा और पौष्टिक पदार्थ युक्त खाद्य-वस्तु को बांटने का रिवाज अब भी प्रचलित है। जिस घर में बच्चा हुआ हो वहां गांव-मुहल्ले के लोग दूध पहुँचाते हैं। इस दूध में पानी की एक भी बूंद मिलाना पाप समझा जाता है। प्रसूति के पांचवें दिन 'पंजाब' की रसम होती है। इस दिन मां को किसी कन्या के हाथ से गऊ-मूत्र और पंचगव्य जिसमें गंगाजल मिला रहता है चखाया जाता है। प्रसूति के ग्यारहवें दिन "सूत्रा" होता है इस दिन बच्चे को कपड़े पहनाए जाते हैं और गले और कमर में सूत के धागे बान्धे जाते हैं। अक्सर ये सभी कपड़े और बान्धे जाने वाले धागे ननिहाल से आते हैं। प्रसूति से पूर्व ही लड़कियों के लिये मायके से कपड़े पौष्टिक वस्तुएं और दीगर उपहार भी भेजते हैं। पुराने वक्तों में तो कुछ लोग गऊएं आदि (दूध के लिये) भेजा करते थे। यह रीति-रिवाज केवल हिन्दू जनता में हैं। हां, हिन्दुओं में मुण्डन संस्कार और मुसलमानों में "सुन्नत" का रिवाज कुछ बातों को छोड़कर एक ही जैसा है। हिन्दुओं में भी और मुसलमानों में भी इस अवसर पर विशेष भोज का प्रबन्ध होता है और दोनों ही ऐसी दावतों में शरीक होते हैं। यह बात अलग है कि रसोई अपनी-अपनी अलग बनाते हैं। बच्चे के लिये दीर्घायु की कामना की जाती है। हिन्दुओं के कुछ परिवारों में यज्ञोपवीत संस्कार भी बडी धूम-धाम से किया जाता है, किन्तु अब

बहुधा इस संस्कार को विवाह के समय ही सम्पन्न किया जाता है। ऐसा आर्थिक परिस्थितियों के कारण है।

शादी सम्बन्धी रिवाज तो धार्मिक असूलों पर टिके हैं। परन्तु इनमें भी थोड़ा-थोड़ा अन्तर स्थान-स्थान पर मिलता है। विवाह शादियों पर खूब रौनक होती है। पुराने जमाने में तो लड़के वालों के घर पांच दिन तक शादी की दावतें उड़ाई जाती थीं और लड़की वालों के घर से बारात तीसरे दिन वापिस आती थी। परन्तु अब यह सब लुप्त हो गया है। उन दिनों बाजा भी विशेष हुआ करता था जो ढोलों और डफ पर ही आधारित था। इसमें तीन तरह के ढोल होते थे और पूरे बाजे के सभी वाद्यों को "डफले" कहा जाता था। दूर-दूर से गवैये बुलाए जाते थे। मरासियों को भी बुलाने का रिवाज था जो बारातियों को भद्दे-भद्दे मजाक भी किया करते थे मगर किसी को भी इस पर आपत्ति नहीं होती थी। शादियों में मजाक के लिये "भत्त बन्नना" भी एक मीठा मजाक था पर अब यह सब लुप्त हो गया है। इसका मजेदार और पूरा विवरण श्री देशबन्धु डोगरा 'नूतन' के उपन्यास "प्योकै भेजो" में मिलता है।

शादी में लड़की वालों के घर में दूसरे दिन चाब होती थी, इस दिन केवल पकवान ही बारातियों को दिया जाता था। दोपहर के भोजन में "सुन्चियां" और दही विशेष भोजन होता था। शर्त पर दही पीना और "सूई सुन्चियां" खाना बहादुरी समझी जाती थी। सूई में किसी भी हालत में पिरोकर पचास से कम सुन्चियां नहीं होतीं मगर आफरीन है उन जवानों को जो मज़े से खा-पचा लेते थे। खाने के बाद बहुत से तो दस-बारह सेर दही पी लिया करते थे।

आज जहां दिखावा और दहेज की लानत बढ़ गई है वहां प्रेम घटता जा रहा है। पुराने वक्तों में लड़की की कद्र अधिक और दहेज की कम होती थी। अधिकतर गहने चान्दी के हुआ करते थे, जिनमें सर के लिये (मुकुट के स्थान पर) चक्क (एक) और फुल्लियां (दो) होती थी। अमीर लोग सोने के भी बनाते थे। गले में चान्दी की सात लड़ियों की "जंजीरी" या "स्हीरी" होती थी। हाथों के गहनों में "टुक्क", "जुट्ट" और चान्दी के कड़े होते थे। गले के लिये सोने की बुगधियां जिनके बीच "हौलदली" या "इनाम" होता था भी बहू को दिये जाते थे। बाजू के लिये सोने या चान्दी का अनन्त भी होता था। पाँव के लिये "तोड़े" 'पंजेब' और कड़ियां होती थीं जिनका स्थान अब शकुन्तला-चैन और गोभी-चैन ने ले लिया है। मर्दों के गहने प्राय: सभी सोने के होते थे। इनमें कंठे, अगूठियां, कानों में अनन्तियां और सोने या चान्दी के अनन्त होते थे।

दहेज में बर्तन, बिस्तर-चारपाई, पीढ़ा-पीढ़ी "चर्खा", 'लोड़खा' गाय-भैंस और भेड़ बकरी शामिल होते थे। किन्तु ये सभी वस्तुएं सादगी का प्रतीक होती थीं। शादी में साधारणतया "दोहरी" का रिवाज भी था, जिसके कारण प्राय:

बेमेल शादियां भी होती थीं। पहाड़ी प्रदेश में अब भी लड़की को शादी पर थालियां और लोटे आदि देने का रिवाज है। शादी पर पचासों थालियां और लोटे इस प्रकार दहेज में लड़की को मिलते हैं।

ये रीति-रिवाज मनुष्य की मौत तक उसके साथ जुड़े रहते हैं। परन्तु अब ये सभी खत्म हो गए हैं और इनका खत्म होना भी लाज़िमी ही था। मरने पर जितनी भी यह प्रथाएं या कुप्रथाएं जुड़ी हैं इनका सविस्तार वर्णन किसी अलग ही लेख में हो सकता है।

अब हम पहाड़ों की एक खास कुप्रथा का वर्णन करेंगे। यह है ''मालिया'' की रस्म। एक औरत यदि अपने घर में नहीं रहती है और किन्हीं पारिवारिक समस्याओं के कारण बिना ''फारगती'' के दूसरा घर कर लेती है तो जिसके घर में वह जाती है उसे दूसरे को कुछ पैसे देने पड़ते हैं, इस धनराशि को ''मालिया'' कहते हैं। मालिये की यह धनराशि सैंकड़ों से लेकर हज़ारों तक हो सकती है। इस तरह अपनी जवानी में एक औरत चार-चार बार बिक जाती है। असल में यह एक तरह की बहु-विवाह प्रथा है। इसी के कारण हिन्दू और मुसलमान दोनों तबकों में 'अपहरण' के केस बहुत होते हैं।

इसके इलावा मनुष्य जीवन से जुड़े और भी सैंकड़ों रीति-रिवाज हैं जिनका ज़िक्र कर पाना इस छोटे से लेख में सम्भव नहीं।

व्यवसाय : पैमास्ता की पट्टी को छोड़ कर रामनगर का पूरा इलाका पहाड़ी है। सब्ज सोने से भरपूर इस इलाके को दो-दो हाथों से लूटा जाता रहा है। पूरे रामनगर के इलाके को प्रकृति ने किसी खास समय में ही सजाया और जड़ी-बूटियों से भरपूर किया होगा। बनफ़शा, गुच्छियां, धूप, कुट्ठ और मौह्रे आदि से यह इलाका भरा पड़ा है। इसके इलावा लाखों दूसरी प्रकार की जड़ी-बूटियां हैं। बे-शुमार परिन्दे मोर, चकोर, नील आदि का यहाँ के जंगल, घर हैं। रौंस (कस्तूरी-मृग) रीछ, चीते आदि भी बे-शुमार पाए जाते हैं।

ज़मीन पहाड़ी है और खेती भी सख्त जफाकशी का काम है। लोगों का साधारण व्यवसाय खेती करना, नौकरी पेशा और कम्बल आदि बुनना है। हमारी फौजों में रामनगर के डोगरे का एक खास योगदान है। हज़ारों सपूत इस धरती ने भारत माँ की सेवा के लिए पैदा किए हैं। व्यापार भी बहुत से लोग करते हैं। बसन्तगढ़ और लाटी-बन्धौल के बने कम्बल दूर-दूर तक मशहूर हैं।

इसके इलावा रामनगर के तिल्लेदार कच्चे चमड़े के जूते दूर-दूर तक मशहूर थे। कुछ लोग खजूर के पत्तों से चटाइयां और बाँस की खपच्चियों के बर्तन बना कर भी अपना जीवन यापन करते हैं। रामनगर की कंघियां (काठ की बनी हुई), कलाड़ियां और देसी घी की भी बहुत चर्चा होती है। बसन्तगढ़ ब्लाक के बहुत से लोग लकड़ी का काम भी करते हैं और उनकी आर्थिक स्थिति

और जीवन-यापन का यह बड़ा आधार है। खनेड़ में लोहा निकाल कर इसके बर्तन भी बनाए जाते थे। गोला-बारूद भी यहां तैयार होता था किन्तु अब यह बन्द हो चुका है। इसके इलावा पशु-पालन भी आम लोगों का पेशा है। अब लघु-उद्योग भी लोगों ने लगाए हैं और अपनी रोज़ी-रोटी का गुजारा करते हैं।

हैरानी की बात यह है कि अभी तक कुदरती तौर से समृद्ध इस इलाके की ओर किसी भी नेता का ध्यान नहीं गया है और यह इलाका अब भी गरीबी की बेड़ियों में जकड़ा आजादी के चालीस सालों को अपनी दास्तां रोकर सुना रहा है।

लोक गीत—लोक कथाएं और लोकवार्त्ता

जिस तरह रामनगर का क्षेत्र प्राकृतिक सम्पदा से माला-माल है उसी प्रकार लोकगीतों, लोक-कथाओं और अन्योन्य लोक-विश्वासों और विभिन्न लोक-नृत्यों का भी खज़ाना है। अलग-अलग धार्मिक तथा सामाजिक उत्सव-त्योहारों पर लोक गीतकार और लोक-नर्तक स्वर्गीय दृश्य प्रस्तुत करते हैं। इन गीतों को कई वर्गों में रखा जा सकता है। "लीक भाखों" का यह क्षेत्र अपूर्व कोष है। भाखों में लम्बी तर्ज़ पर गाए जाने वाले गीत होते हैं। इनकी मशहूर किस्में इस प्रकार हैं—

1. बुल्हालती भाख 2. मल्ल या मलिआली भाख। 3. मरठेआली भाख। (4) भद्राहकी भाख। (5) सुमरती भाख (6) पाद्धरी या पङास्ती भाख। एक ही गीत को हर भाख में अलग-अलग ढंग से गाया जाता है और "सुरों" की चढ़ाई-उतराई के हिसाब से ही इसकी परख होती है। गीतड़ू भी इन गीतों में आते हैं और इनको नृत्य गीतों की कोटि में रखा जा सकता है। साधारणतया इनमें नदी-प्रवाह का-सा वेग होता है और ये चलन्त होते हैं। इन गीतों पर बसोहली, हिमाचल और भद्रवाह के लोक गीतों का भी काफी असर है। बधावे, घोड़िया सिटनियां और सुहाग आदि औरत वर्ग के गीत हैं। इसके अलावा शोक-गीत भी हैं पर इनकी संख्या बहुत कम है और धीरे-धीरे ये लुप्त हो रहे हैं क्योंकि जिस रस्म (पिट्ट-स्यापा या पिट्टो कुट्टा) के साथ ये जुड़े थे वह रस्म भी अब लुप्त-प्राय; सी हो गई है। बिसनपते, लोक-भजन, बार कारक आदि भी बहुत प्रसिद्ध हैं पर ये सभी वर्ग-विशेष अर्थात् गार्डियों और योगियों तक ही सीमित हैं। कारकों में माता चोण्डा, म'ल्ल, कालका, कालीबीर, सिद्ध गौरिया, गुग्गा चौहान आदि की कारकें बहुत प्रसिद्ध हैं। बारों का रिवाज इस क्षेत्र में कम है और जो हैं वे कंढी प्रदेश से आई हैं। वैसे सिद्ध गौरिया, मण्डलीक, गुग्गा आदि की "कारकों" को "बारों" में रखना अधिक उपयुक्त होगा। क्योंकि ये सभी वीर-रस से परिपूर्ण हैं। न जाने किस धोखे में आकर इन्हें कारकों में सम्मिलित किया गया है।

जिस प्रकार लोकगीतों से यह इलाका भरा है, उसी तरह लोक कथाओं का भी खज़ाना है। एक-एक लोककथा की बारह-बारह, चौदह कलियां होती हैं और चार-चार दिन बजुर्ग इनको सुनाने में लगा देते हैं। लोक-गीतों और लोक-कथाओं की ओर ध्यान देकर जम्मू-कश्मीर कल्चरल अकादमी ने भी सराहनीय काम किया है और इस क्षेत्र के सैंकड़ों लोक-गीतों और बीसियों लोक कथाओं को अपने संग्रहों में स्थान दिया है। लोक गीतों की तो यह स्थिति है कि लोक गीतकार नित नई घटने वाली घटना पर गीत रच लेते हैं और धीरे-धीरे ये गीत पूरे इलाके में प्रचलित हो जाते हैं। नृत्यों में "गुर्गैह्ल" और कुड्ढ प्रसिद्ध लोक नाच हैं। विवाह शादियों में औरतें भी "जागरण" करती हैं और नृत्य करती हैं। इनमें अश्लीलता का पुट भी काफी रहता है और आम-सभाओं में इन गीतों को तो गाया ही नहीं जा सकता। पहाड़ी प्रदेश में मर्द भी इस नृत्य-गीत सभा को देख सुन सकते हैं। इसका कारण यह है कि यहां इन गीतों में अश्लीलता का लेश भी नहीं रहता। हां निचले हिस्से में मर्दों का यह जागरणा देखना इस उक्ति को औरतों में घिर जाने से यह सार्थक करता है, "आ वैल मुझे मार।"

लोक-वाद्यों में कैह्ल, नफीर, नरसिंहा, ढोल, डफ, और बांसुरी मशहूर वाद्य हैं जो गीतों में जान ढाल दिया करते हैं।

पहेलियों, लोकोक्तियों, मुहावरों, और दूसरे लोक-विश्वासों की भी कमी नहीं। ऐसी कई लोकोक्तियां हैं जो केवल इस इलाके की छोटी-छोटी घटनाओं और रीति-रिवाजों पर आधारित हैं। जैसे :—

1. बल्हेत्तरे दी ढल्ल
2. खानेईं पण्डे, मरनेईं माधो।
3. जोफड़ नि देस्सै च फिफ्फर नेईं मास्सै च।
4. लुङ्‌ग गेआ पत्तरेईं, नां लुङ्‌नां पत्तर

यही नहीं इस प्रकार की ढूंढ़ने पर सैंकड़ों उक्तियां मिल जाती हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यह इलाका अपना विशेष सांस्कृतिक महत्त्व रखता है। चित्रकारी के बेहतरीन नमूने रामनगर के शीशमहल में मिलते हैं। स्थान-स्थान पर पुराने भवन और बावलियां, पत्थरों की बनी मूर्तियां, मन्दिर और लकड़ी की बनी मूर्तियां यहां की संस्कृति की अपनी मिसाल आप हैं। यहां यह बात भी कहनी उचित होगी कि इन कलाओं के नमूनों को सम्भाल कर रखना हमारा परम कर्त्तव्य है। कुछ लोग अपनी अनभिज्ञताओं के कारण इन चीजों की ओर विशेष ध्यान नहीं देते। उदाहरणतया कसूरी गांव में पुराने पक्के

महलों के खण्डरात हैं जिनकी ओर किसी का ध्यान ही नहीं गया है। वहां से लोग ईंटें भी उठा कर ले गए हैं किन्तु अब भी वहां इन महलों के अवशेष हैं। कहते हैं यह किसी राजा का भवन था। इसके विषय में केवल एक ही बात प्रचलित है—

"राजा सूरियान, न्हौन्दा बाण-गङ्गा, भत्त खन्दा कसूरिया।"

इसी प्रकार चन्हूनता में वज़ीर रामदास द्वारा बनाई बावली कला की मुंह बोलती तस्वीर है। किन्तु अब इसकी पिछली दीवार खस्ता हो चुकी है। ऐसी चीज़ों को सम्भाल कर रखना हमारा परम कर्त्तव्य है। □

जम्मू : एक सांस्कृतिक सर्वेक्षण

□ विश्वनाथ खजूरिया

दंत कथाओं के झरोखे में :

दंत कथा है कि न जाने, कितनी सदियां पहले भद्रवाह से जम्मू की पहाड़ियों तक नाग जाति का राज्य था। जम्मू का प्राचीन नाम किसी को मालूम नहीं। नाग राजा वासुकी कुष्ट रोग से दु:खी था। उसने अपने बेटों से कहा कि चन्द्रभागा नदी के जल में स्नान करने से ही उसका कुष्ट दूर होगा। जो राजकुमार चन्द्रभागा को यहां तक बहा लाएगा, उसे आधा राज्य दिया जाएगा। इस काम में उसका बेटा 'काही' सफल हुआ......।

दन्त-कथा की साक्षी लोक-गीत से प्राप्त होती है :—

बासक राजा बैठा मंडिया, बेही गेआ रचना लाई।
बाई पुत्तर चुरासी पोत्तरे, सब बैठे मंडिया आई।
चन्द्र-चन्हांऽ दा श्नान करां तां कोढ़ हटदा जाई।

इतिहास : ११७३ ई० में अवध (यू० पी०) के आस-पास के गांवों के कुछ साहसी राजपूत अपने परिवारों और कुछ योद्धाओं को साथ लेकर अपने लिए रोजगार और अपने पशुओं के चारे की खोज में पश्चिम की ओर चल पड़े। रास्ते में भाड़े के सैनिकों के तौर, जोखिम भरी मुहिमें सर करते गये। लड़ाइयों में कुछ मारे जाते, कुछ यहां-वहां बस जाते। कुछ साहसी और आगे बढ़े।

वैसे ही जवां-हिम्मत राजपूतों में से कृपाल देव और संग्राम देव दो भाई अपने परिवार और कुछ अनुयाइयों को साथ लिए, आज की 'बाहू' पहाड़ी पर आ टिके।

कुछ समय बाद, बड़े भाई कृपाल देव ने 'बाहू' के समक्ष वाली पहाड़ी (आज के जम्मू) पर दल-बल सहित आकर डेरा जमाया। वहां उन दिनों, घने

जंगल में मेघों और ठक्करों के कुछ कच्चे झोंपड़े और हरी घास की चरागाह थी।

थोड़े दिनों में मूल वासियों और नए आबादकारों में सह-अस्तित्व के आधार पर मेल-मिलाप हो गया। क्योंकि मूल वासियों को पहाड़ी इलाके के चरवालों (गद्दी एवं खस आदि कबीलों) के आए दिन के आक्रमणों से बचने के लिए आबादकारों की सहायता की ज़रूरत थी और आबादकारों के लिए कदम-कदम पर मूल वासियों का सहयोग अनिवार्य था।

आहिस्ता-आहिस्ता सामाजिक सूत्र के तन्तु जुड़ने लगे। नए आबादकारों ने अपनी सरदारी कायम कर ली।[1]

कृपाल देव के वंश में सन् १३५७ ई० में मालदेव (१३६१-१४०७) का उदय हुआ। डॉ० सुखदेव सिंह चाड़क के अनुसार वह बड़ा बलवान और बुद्धिमान राजा था। थोड़े ही दिनों में मालदेव के शौर्य और बुद्धिमत्ता की आस-पास के इलाके में धाक बंध गई। तवी नदी से १०-१२ मन भारी एक पत्थर उठा कर उसने मुहल्ला काली जन्नी में रखा और आस-पास के सैकड़ों लोगों की उपस्थिति में उस पत्थर जो कि बाद में सिंहासन का प्रतीक माने जाने लगा—पर बैठ कर अपने-आपको राजा घोषित कर दिया। शुरू के राजतन्त्र द्वारा शासन चलाने और न्याय करने वाला वह, जम्मू का पहला राजा था। उसकी सैनिक शक्ति की धाक हिमाचल के नूरपुर, कांगड़ा आदि नगरों तक बंध गई। मालदेव के शासनकाल में जम्मू की जनसंख्या और क्षेत्रफल दो-गुणा हो गया।

पुरानी मंडी (जम्मू) का राजतिलक घर राजा मालदेव की ही यादगार है।

सन् १३९८ ई० में तैमूर लंग के साथ मालदेव का घमासान युद्ध हुआ था, जिसके परिणाम के बारे में इतिहासकार एक मत नहीं हैं।

राजा मालदेव से ८-९ पीढ़ियां पश्चात् सन् १७३३ में राजा रंजीत देव राज-गद्दी पर बैठा। उसका राज्यकाल जम्मू का सुनहरी युग कहलाता है। उन दिनों पंजाब में अफरा-तफरी और अशांति थी, परन्तु जम्मू में हर ओर शान्ति विराजमान थी। उस काल के ढले एक सिक्के से उस तथ्य की पक्की

---

1. (क) एस-मिथ जी० सी० ए० हिस्टरी आफ रीनिंग फैमिली ऑफ लाहौर।

(ख) जम्मू नाम के बारे में एक दन्त कथा प्रचलित है—
राजा जाम्बूलोचन और शेर-बक्करी का एक घाट पानी पीना।'
इतिहासकार सुखदेव सिंह चाड़क के अनुसार: "जाम्बूलोचन और बाहूलोचन की कथाएं मात्र काल्पनिक क़िस्से हैं……" (महाराजा रंजीत देव ते उंदा राजकाल)

साक्षी प्राप्त होती है, जिस पर अंकित है—"दार-उल अमन जम्मू" (अमन का घर जम्मू)। यह सिक्का श्रीनगर के (लाल मंडी) म्यूजियम में सुरक्षित है।

उन दिनों लूट-मार के कारण पंजाब-यारकंद का व्यापारी राजमार्ग बंद था और व्यापार ठप्प था। पंजाब आदि के बहुत से हिन्दू-मुसलमान व्यापारी जम्मू आ बसे। महाराजा रंजीतदेव ने मुसलमानों के लिए अलग मुहल्ला बसाया, मस्जिद बनवाई। और पंजाब-यारकंद से व्यापार जम्मू के रास्ते होने लगा, जिस के फलस्वरूप जम्मू के राजकोष में सीमा शुल्क की मद में पांच लाख रुपये सालाना की आय होती थी। इस से उस अन्तर्देशीय व्यापार की मात्रा का और यहां की खुशहाली का अनुमान हो सकता है। बड़े महत्त्व की एक और घटना यह थी कि महाराजा रंजीत देव ने भद्रवाह-किश्तवाड़ से लेकर बसोहली तक फैली बाईस छोटी-छोटी रियास्तों को जम्मू की सरदारी में लाकर उसे 'महा जम्मू' बना दिया।

वह विद्या व्यसनी, कला प्रेमी और जन पोषक भी था। पहाड़ी चित्रकला का संसार प्रसिद्ध चित्रकार नैनसुख और कवि देवी दत्त (दत्तू) उसी के दरबारी रत्न थे।

४ अप्रैल, १७८२ को उस महान महाराजा का देहान्त और उसके साथ ही जम्मू की महानता का सूरज भी अस्त हो गया।

चालीस वर्ष बाद, १६ जून सन् १८२२ ई० के दिन जम्मू के इतिहास में एक मोड़ आया। उस दिन, पंजाब केसरी, महाराजा रंजीत सिंह ने, अखनूर में, चन्द्रभागा के दाएं तट पर गुलाब सिंह को जम्मू परगना का राजा बना दिया था।

फिर सन् १८४६ में अमृतसर के त्रिपक्षीय संधिपत्र के फलस्वरूप, एक राज्य का भाग्य सितारा अस्तांचल में खो गया, उधर डोगरा राज का सूरज उदय हुआ।

संधि-पत्र के अनुसार, महाराजा गुलाब सिंह को रावी नदी से सिंधु नदी के पूर्वी तट तक का सारा इलाका मिल गया। इस प्रकार २५-३० कच्चे झोंपड़ों की कहानी, लगभग ५०० वर्षों में "जम्मू-कश्मीर-तिब्बत हा" का इतिहास बन गई। चौरासी हजार वर्ग मील में फैली, भारत की रियासत की सीमाएं चीन, तिब्बत, रूस और अफगानिस्तान की सीमाओं से जा मिलीं।

अनेक जंगी मुहिमें सर करने और किश्तवाड़, लद्दाख आदि में विद्रोह शान्त करने में जरनल जोरावर की सैनिक सेवाएं जम्मू के इतिहास में सदा सुरक्षित रहेंगी।

रियासत को सुचारू ढंग से संगठित करने के पश्चात् महाराजा गुलाब सिंह ने अपने हाथों से राजगद्दी रणबीर सिंह को सौंप कर राज-काज से संन्यास ले लिया।

नए दौर में अब बुनियादी ज़रूरत थी विद्या के प्रसार की, सड़कें और रास्ते बनवाने की, ताकि सारी रियासत का राज तन्त्र संगठित रहे, जनता का कार-व्यवहार चल सके। उद्योग-धंधें उन्नत हों, लोगों की आर्थिक दशा सुधरे इत्यादि ।

महाराजा रणवीर सिंह एक नीति कुशल शासक, समाज कल्याण में रुचि रखने वाला राजा था। उसने डोगरी भाषा और डोगरा संस्कृति की उन्नति, तथा उद्योग धंधों की उन्नति की ओर विशेष ध्यान दिया।

रियासत भर में नई शिक्षा पद्धति के प्रसार के लिये प्राइमरी-मदरसे, पाठशालाएं और मकतब चालू करवाए। छापे-खाने लगवाए।

जम्मू से श्रीनगर तक कच्ची और सुचेतगढ़-जम्मू तक पक्की सड़क तैयार करवाई। श्रीनगर और जम्मू में रेशम के कारखाने लगवाए। घरेलू दस्तकारियों जैसे शाल-वाफी, हत्थ करघा आदि में नए प्राण फूंके।

रणबीर सिंह ने सेना का पुनर्संगठन किया और रियासत में ही जंगी सामान तैयार करने का कारखाना जारी किया। डाक का ऐसा प्रबंध था कि २५ से ३० घंटों के अंदर डाक जम्मू से श्रीनगर पहुँच जाती थी । श्रीनगर से गिलगित और जम्मू से श्रीनगर तक तार का सिलसिला भी जारी हुआ ।

जम्मू शहर में पानी के नलके, अखनूर-जम्मू नहर और पन-बिजली तैयार करने का स्वप्न साकार करने की जिम्मेदारी महाराजा प्रताप सिंह के जिम्मे छोड़ कर रणबीर सिंह स्वर्गवासी हुए। जम्मू से श्रीनगर और श्रीनगर से कोहाला पुल तक पक्की सड़क, स्यालकोट से जम्मू तक रेलवे लाईन, तवी और अखनूर का पुल, जम्मू में रणबीर हाई स्कूल, प्रिंस आव वेल्ज़ कालेज और श्रीनगर में प्रताप कालेज, अमर सिंह टैकनिकल कालेज और अन्य कई योजनाएं महाराजा प्रताप सिंह ने पूरी करके रियासत जम्मू-कश्मीर को उन्नत राज्यों की पंक्ति में खड़ा कर दिया। महाराजा हरिसिंह (१९२५-१९४८) शाईस्ता, सुशिक्षित, स्वाभिमानी और न्याय-प्रिय शासक था। भारतीय नरेशों में शायद, यह एक मात्र देश भक्त महाराजा था। परन्तु यही देश भक्ति और स्वाभिमान उसके लिये अभिशाप बन गए ।

ब्रिटिश कूटनीति द्वारा कश्मीर हथियाने के लिये महाराजा रणबीर सिंह और प्रताप सिंह के समय में अपनी कुचालें चलाते रहे पर सफल न हो सकी। सन् १९३० की गोलमेज़ कान्फ्रैंस (लन्दन) में महाराजा हरिसिंह के, भारत की स्वतन्त्रता के प्रति उद्‌गारों से अंग्रेज़ तिलमिला उठे। उन्होंने बदले की नीयत से दर-पर्दा, कश्मीर में सांप्रदायिक दंगे भटका दिए। उधर महात्मा गांधी और नेहरू के प्रभाव में आकर शेख मुहम्मद अब्दुल्ला और दूसरे कश्मीरी नेताओं ने मुस्लिम कान्फ्रैंस को जम्मू-कश्मीर नेशनल कान्फ्रैंस में बदल कर रियासत में डोगरा राज के खातमे की ओर अपने आंदोलन की बागें मोड़ दीं और सन्

१९४८ में डोगरा राज का अंत हुआ और रियासत जम्मू-कश्मीर आज़ाद भारत का अंग बन गई।

जम्मू के पवित्र स्थान/मन्दिर :

जम्मू को मन्दिरों वाला शहर यथार्थ ही कहा गया है।

१. **श्री रघुनाथ जी का मन्दिर**—यह १७ मन्दिरों का परिसर है। ऊंचे आधार पर केन्द्र में श्री रघुनाथ जी का मुख्य मन्दिर है और उसकी परिक्रमा में दूसरे देवी देवताओं के १७ छोटे मन्दिर, और सामने महावीर जी का मन्दिर और कुछ समाधियां हैं। एक नटराज का मन्दिर भी है।

इस महान देव-स्थान की बुनियाद सन् १८५१ में महाराजा गुलाब सिंह ने रखी थी। देव मूर्तियों के अतिरिक्त सवा बारह लाख शालिग्राम भी भीतरी परिक्रमा में हैं।

श्री रणवीरेश्वर मन्दिर—उत्तरी भारत में यह सब से बड़ा शिव मन्दिर है। न्यू सैक्रेटेरियट के सामने दो छत्ते ऊंचे आधार पर यह बना है। मन्दिर के भीतर सात फुट ऊंचा, काले संगमरमर का शिवलिंग स्थापित है। उसके निकट ही एक ही बेदी में २-२ फुट ऊंचे बिल्लौर के शिवलिंग और सवा लाख शालिग्राम भी स्थापित हैं। भीतरी दीवारी पर शिव पार्वती, दूसरे देवी-देवताओं और मन्दिर के संस्थापक महाराजा रणवीर सिंह के सुन्दर चित्र बने हैं। बाहर शिवलिंग के ठीक सामने विशाल नंदी बना है। हर रोज सायं-प्रातः यहां शिव भक्तों की काफी भीड़ रहती है। शिव रात्रि पर दूर-दूर से यात्री लोग दर्शनार्थ यहां आते हैं।

पंच वक्तर मन्दिर—राजेन्द्र बाज़ार के पीछे यह शिव-मन्दिर स्थित है। ऐसी धारणा है कि जम्मू के राजा मालदेव ने इस मन्दिर के शिवलिंग की स्थापना की थी। अहाते में तीन अन्य देवालय भी हैं। शिव रात्रि, बसन्त पंचमी, और बैशाखी को यहां बड़ा मेला लगता है।

महालक्ष्मी मन्दिर पक्का डंगा—यहां महालक्ष्मी का प्रसिद्ध मन्दिर है। हर रोज सुबह-शाम लक्ष्मी भक्तों की भीड़ लगी रहती है। दीवाली पर यहां भारी मेला लगता है।

पंच तीर्थी, बाज़ार सराजां और गांधी नगर में लक्ष्मी नारायण के मन्दिरों पर भी हर रोज भक्तों की रौनक लगी रहती है।

मुहल्ला पंचतीर्थी और मोती बाज़ार के पीछे राधा कृष्ण जी का मन्दिर पुन्छ के राजा मोती सिंह की रानी ने बनवाया था। मन्दिर के साथ ही एक तालाब भी था, जहां अब बच्चों के लिए रानी पार्क बना है।

मोती बाज़ार में ही महावीर के दो मन्दिर और तवी के किनारे (पम्पिंग स्टेशन के पास) मोनी बाबा जी ने महावीर की एक विशाल मूर्ति मन्दिर में

स्थापित की है। गांधी नगर में बाबा दूधाधारी ने एक अनोखे विशाल मन्दिर में महावीर की भव्य और सुन्दर मूर्ति स्थापित की है। यहां भक्तों की बड़ी भीड़ लगी रहती है।

जम्मू शहर के मन्दिर गदाधर जी और पुरानी मंडी के मन्दिर श्री रघुनाथ जी की भी काफी मान्यता है।

तवी पार 'महाकाली' और 'महामाया' जी की बड़ी मान्यता है। हर रविवार और मंगलवार को वहां भक्तों की काफी भीड़ रहती है।

जम्मू शहर के बाहर पुरमंडल के शिव मंदिर, साम्बा की चीची देवी के मन्दिर घगवाल के नरसिंह जी के मन्दिर की भी बड़ी मान्यता है। सुकराली देवी और बिलावर के शिव-मन्दिर, सुद्ध महादेव के प्राचीन शिव मन्दिर, सरथल की अठारह भुजी दुर्गा, भद्रवाह के नाग मन्दिरों में भी हिमाचल प्रदेश तक से श्रद्धालु आते हैं।

जम्मू के गुरुद्वारे :

गुरुद्वारा श्री सिंह सभा—रघुनाथ बाजार में स्थित है। शुरू में सरदार साजन सिंह ने उसी स्थान पर अपने घर में ही गुरु ग्रन्थ साहिब का प्रकाश कर रखा था। कालान्तर में उसकी देख-भाल सिख संगत ने शुरू कर दी। फिर सन् १९४१ में एक सिख कमेटी ने उसी स्थान पर नई इमारत और दुकानें बनवाईं। गुरुद्वारे में अब मुसाफिरों के ठहरने और लंगर का भी प्रबन्ध है। अब इस गुरुद्वारे की देख-भाल, डिस्ट्रिक्ट गुरुद्वारा बोर्ड द्वारा होती है।

गुरुद्वारा महात्मा निरंजन दास जी—यह गुरुद्वारा शालामार रोड पर स्थित है। इस की स्थापना उदासी संत निरंजन दास जी ने की थी। उन्होंने यह गुरुद्वारा और एक पक्का हाल बनवाया। उनके देहान्त के पश्चात् संगत ने गुरुद्वारे का नाम महात्मा निरंजन दास जी का गुरुद्वारा रखा।

गुरुद्वारा नानक देव जी—वीर मार्ग जम्मू में स्थित है। भाई दीनानाथ जी ने अपने घर में ही गुरु ग्रंथ साहिब का प्रकाश कर रखा था। वह घर उन्होंने सिखों को दे दिया। वहां अब गुरुद्वारा नानक देव जी की पक्की इमारत बनी है।

गुरुद्वारा सरदार सुन्दर सिंह जी—सरदार सुन्दर सिंह खोराना ने यह गुरुद्वारा (धर्मशाला) गुरु सिंह सभा जम्मू के हवाले कर दिया था।

गुरुद्वारा कलगी धर जी—मुहल्ला रिहाड़ी में यह प्रसिद्ध गुरुद्वारा बना हुआ है।

पंचायती गुरद्वारा—यह ऐतिहासिक गुरुद्वारा धौंथली बाजार में बना है। यह जम्मू का एकमात्र गुरुद्वारा है, जहां गुरु नानक देव जी की संगमरमर की मूर्ति विराजमान है।

गुरुद्वारा नानक नगर—यह जम्मू का सबसे शानदार गुरुद्वारा है। बाबा फकीर सिंह ने दान में ज़मीन दी थी, जिस पर यह भव्य गुरुद्वारा बना है।

खानकाहें, मस्जिदें और गिरजे :

जम्मू में धर्म-निरपेक्षता की परंपरा बड़ी पुरानी है। उसी के फलस्वरूप यहां मन्दिर-मस्जिद और गुरुद्वारे पास-पास दिखाई देते हैं।

दरगाह पीर रोशन शाह वली—गुमट दरवाजे से जम्मू शहर में प्रवेश करने से पहले इसी दरगाह के दर्शन होते हैं। यह बड़े करामाती सूफी फकीर थे। आप बड़े लम्बे-तगड़े थे, इसलिये कुछ लोग प्यार से उन्हें नौ-गज़ा पीर भी कहते थे। मरने पर आप को इसी स्थान पर दफन किया गया था। मकबरे के पास ही एक मस्जिद भी बनी है।

दरगाह पीर मिट्ठा—आप के असल नाम का पता नहीं। आप की बातों में मिठास भरी थी, और कुछ इसलिए कि अपने भक्तों से सिवाय चुटकी भर चीनी के और कुछ ग्रहण नहीं करते थे, आप पीर-मिट्ठा के मृदु नाम से ही जाने जाते थे। आप करामाती शिय्या फकीर थे आपके नाम पर ही उस मुहल्ले का नाम पीर मिट्ठा पड़ा है। आप की खानकाह के पास ही शिय्या मुसलमानों की मस्जिद भी है। यहीं से मुहर्रम के ताज़िए निकलते हैं।

दरगाह पीर बुड्ढन अली शाह—यह दरगाह जम्मू छावनी के पास है। पीर साहिब हिंदू-मुसलमानों को एक समान प्यार देते थे और बड़े पहुँचे हुए फकीर थे।

दरगाह पंजपीर—यह दरगाह जम्मू-श्रीनगर जरनैली सड़क पर अमर महल से थोड़ा आगे एक पहाड़ी पर है। कहते हैं यहां पांच फकीरों का तकिया था जो किसी दुर्घटना में अल्लाह को प्यारे हो गये थे।

मस्जिदें :

अहाता अमर सिंह के पास महाराजा रणवीर सिंह द्वारा एक मुस्लिम वज़ीरनी के लिये बनवाई हुई मस्जिद का नव-निर्माण औकाफ के द्वारा हाल ही में हुआ है। बड़ी भव्य मस्जिद बनी है। शहर की अन्य मस्जिदों के अतिरिक्त तालाब खटीकां की आलीशान जामिया मस्जिद है। इसी कम्पलैक्स में औकाफ द्वारा इस्लामिया मदरसा भी चलता है। एक मस्जिद गांधी नगर में भी है।

इनके अतिरिक्त मुहल्ला अफगानां और मुहल्ला मस्तगढ़ में महाराजा रंजीत देव के समय की मस्जिदें भी हैं। किश्तवाड़ में हज़रत फरीद-उ-दीन की खानकाह पर दूर-दूर से लोग जियारत के लिए आते हैं। उस रोज़ाऽ के अंदर ही उनके दो बेटे भी दफन हैं।

हज़रत शाह असरार-उ-दीन, हज़रत फरीद-उ-दीन के छोटे बेटे थे। अठारह वर्ष की अल्प आयु में ही उनका देहान्त हो गया। इन का रोज़ाऽ किश्तवाड़ के मैदान के दाक्षिणी कोने में बना है।

गिरजे—जम्मू में वज़ारत रोड पर ईसाइयों का गिरजाघर है। इसका संबंध स्काटलैंड चर्च से है।

ज्यूल सिनेमा घर के पास, रोमन कैथोलिक गिरजाघर बने ज़्यादा समय नहीं हुआ। गांधी नगर (जम्मू) का 'कानवेंट स्कूल' उसी संस्था की देन है।

जम्मू के स्टेशनरी डिपो के साथ हाल ही में 'इंडियन नेशनल चर्च' नाम का गिरजा बने अधिक समय नहीं हुआ।

प्राटैसटैंट ईसाइयों के लिए ऊधमपुर में भी एक गिरजाघर बना है।

रीति-रिवाज—रीति-रिवाज हमारी संस्कृति का ही एक अंग हैं। उनकी पृष्ठभूमि शास्त्रोक्त न भी हो, तो भी वे निर्बाध चलते रहते हैं। लता की तरह हमारे जीवन के वृक्ष से लिपटे रहते हैं।

कई रिवाज तो, राम जाने कब से हमारा दामन पकड़े चले आ रहे हैं, तो कुछेक किसी घटना या दुर्घटना से प्रादुर्भूत हो कर चले आते हैं। कुछ बिरादरियों में, विवाह मंडप में, एक बिल्ली मंगवाकर उसे टोकरे के नीचे ढांप दिया जाता है। कहते हैं, कि एक बिल्ली ने विवाह कार्य में बड़ा ऊधम मचाया। घर वालों ने उसे पकड़वा कर टोकरे के नीचे बंद करके रख दिया। लीजिए आगे से यह रिवाज हो गया। रुपये खर्च करके बिल्ली पकड़वा कर टोकरे के नीचे बंद करवायी जाने लगी। और यदि दूल्हा उस टोकरे को न छूए तो विवाह पढ़ाने वाले पंडित जी की शामत⋯"वाह! पंडित जी! आपने 'टोकर-बिल्ली की रीत करवाई ही नहीं⋯।'

इस प्रकार विवाह से जुड़े कई रिवाज हैं। दूल्हे का 'भिक्षा मांगना', सेहरा बांधना, घोड़ी पर सवार होना। (उस घोड़ी के गुण गान के बोल हैं—'ए घोड़ी बावल ने बिंदराबन से मंगाई ऐ⋯') घोड़ी को चने की दाल खिलाना आदि। विचारणीय बात है कि यदि दूल्हा 'भिक्षा' न मांगे, सेहरा न बांधे और घोड़ी पर सवार न हो, तो क्या हो? क्या दुल्हन के साथ वह सप्तपदी न कर पाएगा?

विवाह संबंधी रीति-रिवाजों के हक में भी यह दलील दी जा सकती है, कि इन के बिना उस मंगल-कार्य में रंगत नहीं आती, उनके बिना शादी एक हंगामा मात्र रह जाती है—

"एक हंगामे पै मौकूफ है घर की रौनक, शोर-ए-शादी न सही, नोह-ए-मातम ही सही।" (मिर्जा ग़ालिब)

समाजी रीति-रिवाजों की अपेक्षा, धार्मिक रिवाजों की जड़ें कुछ अधिक गहरी चली गई प्रतीत होती हैं। समाजी रिवाज हमारे जीवन, बल्कि जीवन-धारण करने से पहले ही हम पर हावी हो जाते हैं। जैसे—'ठोआ' की रीत तथा 'मुंडन' संस्कार हैं।

मुंडन—बधाई गीतों की गूंज में बच्चे के सिर के, जन्म के बालों को मुंडन-अश्नान के पश्चात् बच्चे को पीले वस्त्र पहनाए जाते हैं । सुहागिन पूजन और सह-भोज होता है ।

विवाह—यह सच्चे अर्थों में 'मंगल कार्य होता है । मुंडन और विवाह के कुछ रीति-रिवाज एक से होते हैं । दूल्हा के स्नान समय का एक रिवाज कुछ रोचक होता है । दूल्हे का मामा मियान में बंद तलवार कंधे पर रखे, और भांजे की नंगी देह पर गड़वे से पानी डालता है और स्त्रियों की ओर से मामा जी पर मीठी गालियों भरी 'सिठनियों' की बौछार होती है । और मामा जी मुसकुराते-मुसकुराते सोच रहे होते हैं—···मीठी लगे है तोरी गारी, रे···। दूल्हे का ब्रह्मचारी के भेस में 'भीख मांगने' का रिवाज भी दिलचस्प होता है ।

तमोल लेकर 'महाराज' जब घोड़ी पर सवार होने की तैयारी में होता है तो उसकी माता, दूल्हे की शिशु अवस्था के एक 'कुरतू' से उस का मुंह पोंछती है । इस भाव-भीने रिवाज का तात्पर्य होता है कि···"बेटा माँ की ममता को न भूल जाना ।"

दूल्हे को बिदा करके उस घर की स्त्रियों का 'जागरने' का नाच और गाने का सांस्कृतिक कार्यक्रम जिसमें मर्दों का प्रवेश निषिद्ध होता है रात भर चलता है ।

पहले समय में दुल्हन के घर में दूल्हे के रिश्तेदारों और बारातियों को चटखारेदार 'सिठनियां' देने का रिवाज था । दूर देहात में अब भी है ।

दुल्हन के ससुराल पहुँचने पर, द्वार पर ही 'तेल चुआने' और 'कुम्भ बंदाने' और 'सिठनियां' देने का रिवाज है :—

'लाड़ी लम्मी ऐ, लम्मी ऐ, लम्मी ऐ वे,
अर्से शुकर कीता माऊ जम्मी ऐ, वे ।'

पड़ूए पर औरतें गाती हैं :—

"हुल्ले नि बैरिए हुल्ले-इस बैरी दे पत्तर झुल्ले···"

इन मंगलमय रीति-रिवाजों के अतिरिक्त जम्मू के शहरों में बहुत कम और देहाती हिंदू परिवारों में कुछ अधिक विचित्र मातमी रिवाज देखने में आते हैं । वृद्ध मर्द या औरत की मृत्यु भी तमाशा बन जाती हैं । सोगवार घराने के 'कुड़म' (समधि—मर्द-औरतें) ठिठोलियां करती आती हैं और मरने वाले के सगे संबंधियों पर रंग डालती हैं । कहीं-कहीं शव वाले कमरे को ताला लगा देती हैं और 'टैक्स' वसूल किये बिना ताला नहीं खोलतीं ।

आंगन में खड़ी होकर कुड़मनियां मिलकर 'लोहानियां' (मातमी गीत) सुर-ताल पर मिलकर गाती हैं—

"चंदन रुक्ख बढायो जी—लम्मी पैड़ बनायो जी।
उच्ची चिखा बनायो जी—चंदन चिखा बनायो जी।
हाए, हाए, हाए—हाए हाए ओ शेरा हाए···।"

यहां अनेक रिवाजों में से केवल तीन का उल्लेख करके इस अध्याय को समाप्त करना होगा, क्योंकि रीति-रिवाज तो बहुत हैं—

दस बारह वर्ष की आयु में बच्चों के 'दूध के दान्त' स्वतः गिरने लगते हैं। रिवाज है कि ऐसे दांत गोबर में लपेट कर और यह कह कर छत पर फैंके जाते हैं—

"चिड़िए-चिड़िए दुद्धा दा दंद लेई जा,
कामां-कामां सुन्ने दा दंद देई जा।"

ग्रहण पर चांद या सूरज ग्रह पर अन्नादि के दान का आम रिवाज है, किन्तु पहाड़ी गाँवों में ग्रहण लगने पर लोग मकानों की छत्त पर खड़े होकर बंदूक के फायर करते हुए ज़ोर-ज़ोर से ढोल बजाते और आटे की भेड़-बकरियां बना कर ग्रहण के सामने उठाकर जोर-जोर से चिल्लाते हैं—

"छोड़ी दे 'रेहुआ', छोड़ी दे ओ, पापी रेहुआ छोड़ी दे ओ।"

(ऐ पापी 'राहू' चांद (या सूरज) से जो कर्ज तूने लैना है, उसकी किस्त के रूप में यह भेड़-बकरियां ले ले और चांद (या सूरज) को अपनी ग्रिफ्त (ग्रहण) से मुक्त कर दे)—

पत्थर चौथ—ऐसा ही एक और विचित्र रिवाज पुराने लोगों के हां प्रचलित था, अब उसकी याद ही बाकी है। यदि भादों मास के शुक्ल पक्ष की चौदश की रात के चाँद पर भूले से किसी की नजर पड़ जाती तो, ऐसा (अंध) विश्वास था कि उस व्यक्ति पर चोरी का अभियोग लगेगा।

एक पौराणिक कथा अनुसार भगवान कृष्ण जी पर भी एक बार ऐसा अभियोग लगा था।

और उसका प्रतिकार था, लोगों से गालियां खाना। 'दोषी' व्यक्ति रात को, चोरी छिपे लोगों के घरों में पत्थर फैंकते और फल-स्वरूप लोगों से गालियां खाते हैं। और गालियां खाकर 'बे-मज़ा' नहीं होते।

लोगों के आर्थिक आधार :

एक समय था जब जम्मू का जन-जीवन बड़ा साधारण था। लोगों की आय के साधन सीमित थे—जिसका स्पष्ट कारण था निरक्षरता और जहालत। अपनी गरीबी पर भी साधारण जन संतुष्ट थे। उनकी टेक थी—"होई सो जो राम रचि राखा।"

बीसवीं सदी के प्रथम दशक में सामाजिक व्यवस्था की चूलें चरमराने लगी थीं, पर इस में पुरातन दम-खम अभी बाकी था। वाणिज्य, व्यापार और

खेती-बाड़ी दादा-परदादा के पुराने ढर्रे पर चल रही थी। मुश्किल से हजार में पांच-सात व्यक्ति निरक्षरता की लक्ष्मण रेखा पार कर पाते थे। जहालत थी। ऐसे वातावरण से दु:खी होकर डोगरी कवि हरदत्त (सन् १८९० से १९५६ ई०) ने लिखा था—

"होर देस ते पुज्जे बलैंती, तूं ढट्ठा सतवारी ।
कियां गुजारा, तेरा होग ओ डोगरेआ देसा...."

मन्दिरों में पुजारी-संजू, या दफ्तर के चपरासी और सिपाही की नौकरी डोगरों के लिए रह गई थी। अन्य पदों पर बाहर से लोग आते थे।

किंतु कुछेक घरेलू दस्तकारियों में हमारी दशा उन्नत थी। हमारे कुम्हारों की बनी मिट्टी की सुराहियों और रोगनी हांडियों की पंजाब भर में बड़ी मांग थी। जम्मू की लाखी जूती और कामदार जनाना-मर्दाना जूतियां खास फरमाइश पर बाहिर जाती थीं।

जम्मू में पीतल-ताम्बा की चादरों पर कस्टम ड्यूटी माफ थी इसलिए पीतल, ताम्बा और कांसी के बरतन पंजाब के मुकाबले सस्ते थे। यहां मोती बाजार में बरतन बनाने की इन्डस्ट्री ज़ोरों पर थी। जम्मू-कश्मीर और पंजाब भर में यहां से भारी मात्रा में बरतन जाते थे।

इसी तरह रामनगर, किश्तवाड़, भद्रवाह आदि पहाड़ी इलाके का ऊनी धंधा (लोई-कम्बल आदि) वहां के लोगों की आय का बड़ा साधन था। अब भी है। पहाड़ी लोगों की आय का दूसरा बड़ा साधन है वन सम्पदा की कटाई और ढुलाई द्वारा।

सारे प्रांत की ७०-७२% जनसंख्या का आर्थिक आधार कृषि है। इस के अतिरिक्त गुज्जर, बक्करवाल और गद्दी भी हमारे प्रांत की जन-संख्या का भाग हैं, जिनकी जीविका का धंधा है गाय, भैंस, भेड़-बकरियां चराना और दूध-घी, ऊन आदि का व्यापार।

इधर विद्या का काफी प्रसार होने और सरकारी और गैर-सरकारी ढांचे में दफ्तरी काम-काज बढ़ जाने के कारण पढ़े-लिखे लोगों की काफी खपत हो रही है।

भारतीय महाद्वीप से विदेशी राज का 'अस्त' और हमारे हां राजा राज और जागीरदारी का अन्त होने से राजतंत्र और समाज व्यवस्था को धचका लगा। बिना किसी भेद-भाव के हर प्रौढ़ नागरिक को मताधिकार मिलने से वर्ण व्यवस्था की पुरानी हवेली ढह गई। नौकरी और अन्य काम-धंधों पर से वर्ग-विशेष का एकाधिकार समाप्त हो गया।

हम औद्योगीकरण की ओर तेज गति से आगे बढ़ रहे हैं। इंडस्ट्रियल एस्टेट, इंडस्ट्रियल काम्पलैक्स बड़ी ब्राह्मना, डिग्याना और कठूआ के कल-कारखाने इस दावे के साक्षी हैं, यहां हजारों मजदूर और तकनिशियन देश को

आर्थिक और औद्योगिक उन्नति के पथ पर आगे बढ़ा रहे हैं। लघु उद्योग-धंधे सरकारी प्रोत्साहन के सहारे उन्नति के पथ पर हैं और दक्ष दस्तकारों की रोज़ी का साधन हैं।

हमारे शहर और उसके आस-पास की बस्तियों और अन्य उप-शहरों में ग्रह निर्माण का काम जोरों पर है। उसके लिए मुकामी लेबर बिलकुल नाकाफी होने के कारण, बिहार, उड़ीसा, यू० पी०, मध्य प्रदेश और पंजाब आदि से हज़ारों मजदूर-मिस्त्री यहां आकर काम करते हैं।

ट्रान्सपोर्ट—आजकल ट्रांसपोर्ट भी हमारे जहां का एक मुख्य धंधा है, जिसने आज़ादी के पश्चात् धड़ल्ले से उन्नति की है। इस धंधे से संबंधित व्यक्तियों की संख्या भी असंख्य है।

हमारे त्योहार—

मेहनत-मुशक्कत के बाद आराम की ज़रूरत होती है। इस प्रकार जीवन की थकान को दूर करने और तलखियों में शीरीनी घोलने के लिए पुरखों ने साल-भर में समय-समय पर त्योहारों के कुछ शुभ दिन निश्चित कर रखे थे, कि हम प्रति-दिन की रगड़-झगड़ से छुटकारा पाकर थोड़ा मौज-मेला मना सकें। हर जाति और समाज में यह प्रवृत्ति पाई जाती है। समाज-शास्त्र के संसार भर में प्रसिद्ध विद्वान सर के० एम० जोन्स ने 'हिस्टरी ऑव दि प्रिमिटिव वर्ल्ड' में लिखा है—

"इफ द फैस्टिवल्ज़ ऑव द ओल्ड ग्रीक्स, रोमनस् एंड इजिप्टियन्ज़ कुड बी अरेंज्ड इन द सेम फार्म विद द इंडियन्ज़, दियर वुड बी फौंड ए स्ट्राइकिंग रिज़ेम्बलेंस अमंग देम..."

हमारे कुछ त्योहारों का संबंध ऋतुओं से है। कुछेक देवी-देवता और कुछ अन्य बलिदानियों और महापुरुषों की याद में मनाए जाते हैं और राष्ट्रीय त्योहार भी हैं।

बैसाखी—यह विक्रमी संवत् का पहला दिन है। इस माह खरीफ की फसल, जो हमारे प्रदेश की मुख्य फसल होती है—पक कर तैयार होती है। इस खुशी में यह त्योहार मनाया जाता है। लोग विशेष कर कृषि संबंधी लोग—भड़कीले वस्त्र पहने और पैरों में घुंघरू बांधे लोक नाच 'भांगड़ा' की मस्ती में खो जाते हैं। खूब राग-रंग होता है। कई देव स्थानों और नदियों पर भारी मेले लगते हैं।

धर्म दिन (धर्म ध्याड़ा) और निर्जला एकादशी—यह दोनों त्योहार जून महीने में आते हैं, जबकि गर्मी पूरे यौवन पर होती है। धर्म-ध्याड़ा आषाढ़ की संक्रान्ति के दिन आता है। जैसा कि नाम से विदित है, यह शुभ दिन दान-पुण्य कार्य करने का दिन है। उस दिन विशेष रूप से मिट्टी के नए घड़े (शीतल

जल से भर कर) और साथ खरबूजे, आम आदि फल, पंखियां, सब्जी, तरकारी अन्नादि और धन-वस्त्रादि दान करने और बाजारों गली-कूचों में ठंडे शरबत की छबीलें लगाने का माहात्म्य है ।

निर्जला एकादशी—धर्म ध्याड़े से ग्यारह-बारह दिन बाद आती है । लोक विश्वास है कि इस दिन आकाश निरभ्र रहे तो अगले दिनों में भरपूर बरसात होती है । स्त्रियां उस रोज़ व्रत रखती हैं । कुछ दृढ़ विश्वासी स्त्रियां दिन-भर जलपान भी नहीं करती । धर्म-ध्याड़े की तरह उस रोज़ भी जल से भरे घड़े-पंखे, फल, सब्जी, अन्नादि का दान किया जाता है, शीतल शरबत की छबीलें लगती हैं ।

रक्षा बंधन, कृष्ण जन्म अष्टमी, वत्स द्वादशी, (दूर्वाष्टमी) यह वर्षा ऋतु के त्योहार हैं ।

रक्षा बंधन—यह पवित्र त्योहार श्रावण पूर्णिमा को आता है । इस रोज़ बहिनें अपने भाइयों को राखी बांधती हैं । पुरोहित अपने यजमानों को और दस्तकार लोग अपने उपकरणों को भी राखी बांधते हैं । भाई यथा-शक्ति बहिनों को धन देते हैं ।

कृष्ण जन्माष्टमी—इस पवित्र त्योहार का संबंध आज से हजारों साल पहले के उस महान दिवस से है जब राजा कंस के बंदी गृह में भगवान कृष्ण का जन्म हुआ था । इस रोज़ निराहार व्रत और कुछ फलाहर होता है । कई घरों में और कृष्ण मंदिरों में कृष्ण जी के झूले लगते हैं । रात के १२ बजे तक मंदिरों और कुछ घरों में भजन-कीर्तन होता है । जन्म समय रात बारह बजे कृष्ण-मंदिरों में शंख-ध्वनि और झांझ-घड़ियाल आदि के साथ आरती होती है । उस रोज़ झूला झूलने का भी माहात्म्य माना जाता है । दिन भर पतंगबाज़ी का भी ज़ोर रहता है ।

वत्स द्वादशी, दूर्वाष्टमी और गोवर्धन पूजा :—इन तीन त्योहारों का संबंध भगवान कृष्ण के जीवन से है ।

वत्स द्वादशी—जन्माष्टमी के बाद की द्वादशी को वत्स द्वादशी का त्योहार आता है । कभी उस दिन गऊ के बछड़ों-बछड़ियों की पूजा प्रतिष्ठा होती थी । अब उनके स्थान पर आटे के 'बच्छू-कट्टुओं' की पूजा होती है । स्त्रियां अपने घर में जन्मे नवजात शिशु, आटे के मीठे 'रुट्ट' आटे के 'कट्टू-बच्छू', फल और 'बिरड़' आदि लेकर किसी नदी या पन्यास पर 'दुआह्' पूजने जाती हैं । अपने संबंधियों के हां 'रुट्ट' और फल बांटे जाते हैं ।

दूर्वाष्टमी या राधा अष्टमी का त्योहार—जन्माष्टमी के आगे आने वाली शुक्ला अष्टमी को यह त्योहार मनाया जाता है । इसमें 'कट्टू-बच्छू' के स्थान पर दूर्वा (खब्बल घास) के तिनकों का पूजन होता है । बाकी विधान वत्स द्वादशी जैसा ही है ।

नाग पंचमी—दूर्वा अष्टमी से आगे पड़ने वाली शुक्ला पंचमी को नागों का त्योहार आता है और लगभग सारे उत्तरी भारत में मनाया जाता है। इसके बारे में दन्त-कथा प्रचलित है कि भगवान शंकर ने शिव रात्रि के पर्व पर जो-जो सांप-बिच्छू अपनी झोली से निकाले थे उन्हें वह नाग पंचमी के रोज़, फिर अपनी झोली में डाल लेते हैं। नाग पंचमी से पहले घरों की सफाई कराई जाती है। रसोई घर की एक दीवार पर काले रंग से एक 'चौक' रंगा जाता है और उस पर चावलों की पिष्टी के साधारण सांप, नाग, बिच्छू आदि अंकित किए जाते हैं। 'खीर और म्हेरी' (खट्टी लस्सी और चावलों की खीर) का नैवेद्य लगा कर उनका पूजन किया जाता है और नाग की बाम्बी पर दूध की लस्सी चढ़ाई जाती है।

नवरात्रे—यह त्योहार चेत और असूज महीने, साल में दो बार आता और नौ दिन तक चलता है, इसलिए 'नवरात्री' या नवरात्रे कहलाता है और उत्तरी भारत में बड़े उल्लास से मनाया जाता है। इन दिनों घरों में दुर्गा भगवती की 'साख' बोई जाती है। दुर्गा पाठ होता है। माता की भेटां नामक गीत गाए जाते हैं। असूज के नवरात्रों में राम लीला होती है। दुर्गा-अष्टमी और महा-नवमी को जम्मू में किला बाहू पर और देवी के अन्य स्थानों पर भारी मेले लगते हैं। घर-घर कन्या-पूजन होता है। असूज नवरात्रों में नवमी के दिन राम लीला समाप्त होती है और अगले रोज 'दशहरे' का त्योहार होता है। रावण, कुम्भकरण, मेघनाद और लंका दहन होता है।

करवा चौथ—यह सधवा हिंदू स्त्रियों का अनन्य त्योहार है, जो उत्तरी भारत में नवंबर मास में बड़ी निष्ठा के साथ पति की दीर्घायु के लिए मनाया जाता है। प्रातःकाल तारों की छांव में स्त्रियां (और कुंवारी कन्याएं) 'सरघी' खाती हैं। फिर दिन भर बिना अन्न-जल के रहती हैं। दिन ढले एक घेरे में खड़ी होकर अपना-अपना 'बेआ बंटाती हैं'। और रात्रि के समय वह 'बेआ' अपनी सास या ससुर को भेंट करती हैं। चन्द्रोदय होने पर चांद को अर्घ्य देकर भोजन करती हैं।

दीपावली—नवंबर मास में विजय दशमी से बीस दिन बाद दीपावली का महोत्सव देश भर में बड़े उल्लास के साथ मनाया जाता है। इसी रोज श्री राम चन्द्र जी १४ वर्ष का बनवास काटकर और लंका पर विजय प्राप्त करके अयोध्या लौटे थे। दीवाली से पहले लोग अपने घरों और दुकानों की सफाई करवाते हैं। दीवाली की रात को घरों और बाज़ारों में दीपक माला होती है और बाज़ारों (विशेष रूप से हलवाइयों और खिलौनों की दुकानों पर) भारी भीड़ होती है। रात को लक्ष्मी की पूजा होती है।

भैया दूज—दीपावली के तीसरे रोज, बहिन-भाई के पवित्र स्नेह से जुड़ा

हुआ यह त्योहार आता है। राखी की तरह इस रोज़ भी बहिनें अपने भाइयों को 'टिक्का' लगाती और अपने 'वीर' की दीर्घायु की कामना करती हैं।

लोहड़ी—यह शरद् ऋतु का अन्तिम दिन है, क्योंकि अगले रोज, उत्तरायण के पर्व पर पृथ्वी के उत्तरी गोलार्ध का रुख सूरज की ओर हो जाता है। शीतकाल से छुटकारा पाने की खुशी में लड़के दिन भर 'डंडारस-छज्जा' नाच नाचते हुए घरों-बाज़ारों में घूमते हैं। लड़कियों का लोहड़ी मांगने का रिवाज अब घट गया है। रात को घरों-बाज़ारों में लोहड़ी जलाई जाती है। लोग उस रोज चिड़वे-रयोड़ियां खाते हैं।

अगले रोज उत्तरायण के पवित्र पर्व पर तीर्थ स्थानों पर जाकर लोग स्नान और दान पुण्य करते हैं।

शिवरात्रि—भगवान शिव का यह महोत्सव, माघ कृष्ण पक्ष की चौदश को आता है। उस महारात्रि को शिव भक्त रात भर शिवजी का पूजा-पाठ करते हैं और जम्मू में रणवीरेश्वर मंदिर, पंचवक्तर, पीर खोह और पुरमंडल, सुद्ध महादेव में शिव-दर्शन करते हैं।

बसंत पंचमी—अमराइयों में कोयल की मधुर कूक पता दे रही है, कि पुरवाई के वाहन पर सवार ऋतु राज बसंत आ पहुंचा है। उस के स्वागत में खेतों में सरसों खिल खिला रही है, 'करीर' (जंगली गुलाब) की टहनियां झूम-झूम रही हैं—"सरदी का मौसम, शीत-पाले की गठरी उठाए भाग गया है। उसके स्थान पर 'मौसम बहार' आ गया है।

होली—यह रंगों और नाच-मस्ती का त्योहार फागुन मास की पूर्णिमा से ८-१० दिन पहले ही शुरू हो जाता है। हमारे प्रदेश और भारत भर में ही नहीं, अन्य देशों में भी हंसी-ठिठोली का यह त्योहार अपने-अपने ढंग से मनाया जाता है। अंग्रेज़ निबन्धकार चार्ल्स लैम्ब ने इंग्लैंड के इस फैस्टिवल को 'आल फूल्ज़ ए डे' का नाम दिया था।

अपने हां की होली के दो भाग किए जा सकते हैं—

(क) सभ्य होली और (ख) 'त्रप्पड़ होली।'

आज से ५०—६० साल पहले सभ्य होली का चलन अधिक और 'त्रप्पड़ होली' का अनुपात कम ही था।

बड़ी होली से पहले दिन व्यापारी वर्ग और अन्य 'खाते-पीते लोग अच्छे साफ-सुथरे कपड़े पहन कर और बड़े-बड़े देगवरों में लाल, पीला, हरा रंग घोल कर, और गुलाल वहंगियों पर लदवा कर, और टोलियां बना कर घरों से निकलते थे। जाने-पहचाने लोगों पर रंग डालते गुलाल पोतते शहर भर का चक्कर लगाते थे। कुछ टोलियों के गाने-बजाने वाले भी होते थे।

बड़ी होली 'शाही होली' कहलाती थी। महाराजा और दरबारी लोग हाथियों पर सवार होकर होली खेलने निकलते थे। उस रोज राजा-रंक में कोई

भेद न रहता। दोनों ओर से रंग की फुहारें और गुलाल के गुब्बारे चलते थे। दूसरी ओर त्रप्पड़ होली थी 'शम्मा-त्रप्पड़' की, अश्लील होली। दिन ढलने से पहले होली समाप्त हो जाती और गली-बाजारों में अग्नि के अलाव में होलिका दहन होता। मित्र लोग एक-दूसरे से गले मिलते और एक दूसरे का मुंह मीठा कराते थे। यह प्रथा किसी सीमा तक अभी भी है।

मुसलमानों के त्योहार

शब-ए-बारात—यह मुसलमानों का खुशियों भरी रात होती है।

ईदुल-फ़ितर—मुसलमानों का बड़ा त्योहार है। यह ईद रमज़ान महीने की समाप्ति पर आती है। ईद की खुशी में हिन्दू भी शरीक होते हैं।

ईदुल जुहा—यह इस्लाम के संगठन का आधार मानी जाती है। खुदा के आह्वान पर हजरत इब्राहीम अपने बेटे की कुर्बानी तक देने को तैयार हो गए थे, उसी की याद में ईदुल-जुहा मनाई जाती है। दुम्बे, भेड्डू आदि की कुर्बानियां उसी की याद में दी जाती हैं।

ईद-ए-मेलाद—यह हज़रत मुहम्मद का मुबारिक जन्म दिन और बड़ा इस्लामी त्योहार है।

सिक्खों के त्योहार—

सिक्खों के लगभग सभी त्योहार या पर्व दसों गुरु महाराज के शुभ जन्म-दिवस से संबंध रखते हैं। उन त्योहारों पर सारे नगर में ठंडे शरबत की छबीलें लगती हैं। गुरुद्वारों पर काफी भीड़ होती है। दीवान लगते हैं। श्री गुरु गोविन्द सिंह जी के उत्सव से पहले रोज जम्मू शहर में भारी जुलूस निकलता है।

क्रिसमिस का त्योहार—

ईसाई धर्म के प्रवर्त्तक हज़रत यीशू मसीह का जन्म ईस्वी सन् के शुरू होने से चार साल पहले सीरिया के एक गांव में हुआ था। उनके अनुयायी ईसाई कहलाते हैं। यीशू मसीह के शुभ जन्म दिवस (२४ दिसम्बर) से सात दिन तक क्रिसमिस का त्योहार सारे संसार में मनाया जाता है।

महावीर जयन्ती—

यह जैनियों का बड़ा त्योहार है, जो मार्च महीने के अन्त में मनाया जाता है। उसके इलावा जैनियों का व्रत पर्व भी आता है, जबकि जैन संप्रदाय के लोग सामूहिक व्रत रखते हैं।

डोगरी लोक कथाएं—

एक जिज्ञासा मचलती थी कि हमारे देश में जब पढ़ाई-लिखाई का यथेष्ट

प्रबन्ध न था, तो यहां के निवासी नित्य-प्रति का व्यावहारिक ज्ञान कैसे प्राप्त करते थे ?

लोक-वार्ता के विद्वान, हुमायूं कबीर ने 'आवर हैरिटेज' में इस संबंध में लिखा है कि "देश-विदेश में घूमने वाले सौदागर, घुमक्कड़ संन्यासी-फकीर और रवायती कथक्कड़ देश के गांव-गांव घूम कर जो लोक-कथाएं लोगों को सुनाया करते थे, उनमें प्रतिदिन व्यवहार में आने वाले ज्ञान, साधारण विज्ञान, दीन-धर्म और नीति की जानकारी भरी रहती थी। निरक्षर होते हुए भी ग्रामीण लोगों को ऋतु संबंधी, कृषि, खगोल, दीन-धर्म, सदाचार, पशु और मानवीय रोगों के निदान और (घरेलू) इलाज आदि की साधारण जानकारी प्राप्त हो जाती थी और लोक-रंजन तो होता ही था, जिस कारण लोग रात-रात भर जाग कर लोक-कथाएं सुना करते थे।"

वह कथाएं बपौती के तौर पर पुश्त-दर-पुश्त चली आ रही हैं। बहते नीर के समान, राम जाने, उनमें कहां-कहां का 'नीर' आकर मिलता रहा, कितनी लहरें बिछुड़ती रहीं।

हुमायूं कबीर और वासुदेवशरण अग्रवाल की यह धारणा भी थी कि "हमारी बहुत-सी पुराण कथाएं, लोक-कथाओं का ही बदला हुआ रूप हैं।"

लोक-कथाओं का चलन अंतर्राष्ट्रीय है। स्काटलैंड की एक लोक-कथा के आधार पर शैक्सपियर ने अपने संसार प्रसिद्ध अंग्रेज़ी नाटक 'किंग लियर' की रचना की थी। उसी लोक-कथा का वर्मा, इंडोनेशिया आदि देशों में भिन्न नामों से चलन हुआ, और कलांतर में सात-समुंदर पार की उसी लोक-कथा ने, 'लूनका हिरख' नाम से डोगरी लोक-कथा भण्डार में आकर मुकाम किया।

लोक-साहित्य विशारदों का यह भी मत है कि जैसे कुछ मूल तत्त्वों के आपस में मिलने से ही, सारे जड़ चेतन पदार्थों का निर्माण हुआ है, वैसे ही, थोड़े से मूल-कथानकों और लक्षणों के लौट-फिर कर मिलने से लोक-कथाओं का सृजन होता है।

उन कथाओं का नायक, आम तौर पर कोई राजा (राजकुमार) या कोई सौदागर आदि होता है। उस राजा के नाम-धाम के बारे में न श्रोता को कौतूहल होता है, न ही कथक्कड़ को चिंता होती है। 'इक हा राजा', बस इतना ही काफी है। यह कथाएं ऐसे सीधे-सादे शब्दों से पिरोई होती हैं कि हर बच्चा, बूढ़ा उन्हें समझ लेता है। रचना उनकी ऐसी सरस और वर्णन ऐसा दिलचस्प होता है, कि एक ही 'कत्थ' बार-बार सुन कर भी जी नहीं भरता।

मशहूर कथा—शिल्पी मुल्क राज आनन्द ने कहा था—'यह लोक-कथाएं, नयी पीढ़ी को पुरानी परम्पराओं से जोड़ती हैं…।" उन्होंने साहित्यिक कहानी के लिए भी लोक-कथा की शैली अपनाने की सिफारिश की थी और यह भी

स्वीकार किया था कि……"मेरा कथा-साहित्य, लोक-कथा की परियों से प्रभावित है।"

जम्मू-कश्मीर कल्चरल अकादमी जम्मू डोगरी लोक-कथाओं के १४ संग्रह छाप चुकी है। कुछ अन्य संग्रह भी छपे हैं। इन कथाओं की लोक-प्रियता का 'कुछ' अनुमान इससे भी लग सकता है कि जापानी विदुषी श्रीमती 'नोरिको' ने एक अमरीकन यूनिवर्सिटी से 'डोगरी फोक टेल्ज़' पर 'थीसिस' लिख कर पी० एच० डी० की डिग्री प्राप्त की थी। उन्होंने जम्मू शहर और उसके आस-पास के गांवों में घूम फिर कर ४०० से ऊपर डोगरी लोक-कथाओं का संग्रह किया था।

डोगरी लोक-कथाओं का भण्डार असीम है। समय की पुकार है कि कुछ साहसी साधक, गुजरात के श्री झावरे चंद मेघानी की तरह इस महान कार्य को हाथ में लेकर अपनी बहुमूल्य थाती को सुरक्षित करें।

उपलब्ध कथा भण्डार के वर्गीकरण और उसके आधार पर कथाओं की निर्देशिका तैयार करनी होगी, ताकि उनका बाकायदा अध्ययन हो सके। डोगरी लोक-कथाओं के निम्न वर्गीकरण पर मतैक्य होने की संभावना है (कमी-वेशी हो सकती है) :—

(१) राक्षस, भूत, परियों आदि की चमत्कारी कथाएं।

(२) शिव-पार्वती, पांच-पाडवों, देवी-देवताओं और सिद्धों की कथाएं।

(३) राजाओं, सूरमाओं और सौदागरों की कथाएं।

(४) दरिया, सरोवर संबंधी कथाएं।

(५) पशु-पक्षी संबंधी कथाएं और

(६) विविध कथाएं।

१. परी, जिन्न, भूत आदि की डोगरी कथाओं पर अरबी का अलिफ लैला कथाओं का काफी प्रभाव दिखाई देता है और कुछ एक कथाओं का मूल स्थान डोगरा देश भी हो सकता है, जैसे : 'ढललनी वाला भूत', 'भूत भूतड़ू' आदि। वैताल संबंधी कथाएं भी उसी कोटि में आती हैं।

२. शिव पार्वती और सिद्धों आदि की कथाएं, शुद्ध महादेव के पहाड़ी इलाके में आम प्रचलित हैं। ऐसी दो कथाएं 'आद स्त्रिश्टी' और 'मित्ती दी करामात' थोड़े से फेर-बदल से हिमाचल प्रदेश और हमारे पहाड़ी इलाके में प्रचलित हैं।

३. राजा रानी की डोगरी में अनेक लोक कथाएं हैं: 'राजा रघु', 'सुंदरां रानी,' 'ढोल बादशाह' आदि।

४. दरिया-सरोवर संबंधी भी कुछ कथाएं सुनाई जाती हैं, जैसे—'चंदर

नागा और बासक राजा, भँड़ देवता, देवका नदी और मानसर या मनीसर की कथाएं ।

5. पशु-पक्षी संबंधी डोगरी लोक-कथाओं पर पंचतंत्र और हितोपदेश आदि की संस्कृत कथाओं का प्रभाव स्पष्ट है। यह नीति और न्याय प्रधान कथाएं हैं और बच्चों की कथाएं हैं। 'काँ ते चिड़ी', 'तुखम तसीर' (एक घोड़े की कहानी) काफी प्रचलित हैं।

डोगरी लोक-कथाओं की कुछ विशेषताएं यह हैं—

इनमें कौतूहल भरा रहता है। इनमें पशु-पक्षी-वृक्ष बोलते हैं। यह घटना प्रधान कथाएं हैं। इनमें मंगल कामना और सद्-उपदेश भरा होता है। यह प्राय: सुखांत होती हैं। इनमें नंगी प्रेम वासना नहीं पाई जाती…।

लोक-गीत

''गिल्ले गोह्टे लाई चु'ल्ली,
धुएं पज्ज रोन्नी आं……।'' (डोगरी लोक-गीत अंश)

(पति विछोह की वेदना के आंसू, सास-ननद से छुपाने हेतु, चूल्हे में गीले उपले सुलगा कर धूंएं के मिस रो रही हूं…) कितनी मनोवैज्ञानक गहराई है उपरोक्त डोगरी लोक-गीत के अंश में।

इन लोक-गीतों में डोगरा देश के जन-जीवन का यथार्थ चित्र मन के पर्दे पर उभर आता है। कहीं हरे-भरे पहाड़ी मार्गों पर गायें, भैंसें, भेड़ें चराते चरवाहों के विरह गीतों की स्वर लहरी, खेतों में काम करते किसानों के श्रम गीत, कहीं वियोग-व्यथा, बच्चे के जन्म विवाह आदि, के संस्कार गीत कहीं वीर डोगरों की वीरता की 'बारों' के बोल तो कहीं भक्ति रस में भीगे बिसनपते आदि-आदि…। मध्य प्रदेश के एक लोक-गायक ने लोक-गीतों के संबंध में कितनी बड़ी बात, कितने थोड़े शब्दों में कह दी थी, 'यदि आपको मेरे जीवन की सच्ची कहानी सुनने की इच्छा हो तो आप मेरे लोक गीत सुनो…।'

लोक-संस्कृति और जन-जीवन की धारा का कितना गूढ़ ज्ञान होगा उस लोक-कवि को।

लोक-गीतों की परिभाषा करते हुए श्री राम नरेश त्रिपाठी ने 'कविता कौमुदी' (भाग ५) में लोक-गीतों की तारकशी यूं की है—

''यह ग्राम-गीत प्रकृति के तारों की झन्कार हैं। इनमें अलंकार नहीं केवल 'रस' है। 'छंद' नहीं, केवल लै है ……।''

अतः यह कथन अनहोना न होगा कि डोगरी लोक-गीत हमारी संस्कृति की 'साक्षात् मूर्ति' हैं। यह कब से चले आ रहें हैं? इस संबंध में कुछ कहना हमारे लिए सम्भव नहीं। लोक-कथाओं के समान यह भी असंख्य हैं। कुछेक

डोगरी लोक-गीतों पर पड़ोसी पंजाब की परछाईं अवश्य पड़ी है। किन्तु अब वह परछाई हमारी संस्कृति में रच-पच गई है।

यह लोक-गीत, जिन्हें कुछ विद्वानों ने 'ग्राम-गीत' की संज्ञा भी दी है, देहातियों को इकट्ठा मिल-बैठने और अपने दु:ख-दर्द के 'बखिए' उधेड़ने और दिन भर की उनकी थकान दूर करने का भी अमूल्य साधन बनते हैं। वह देखिए मज़दूरों की टोली। दिन भर चट्टानें तोड़ने और सड़क बिछाने के कमर तोड़ काम से छुट्टी करके एक जगह इकट्ठे बैठे, कानों में उंगली ठोंसे एक श्रम गीत की भाख लगा रहे हैं :—

डूह्‌गी बे डूह्‌गी डबरी,
कुतै पानी हिल्लेआ ऽऽऽ बे ना।
उच्ची बे उच्ची ढक्किया,
बसैंती साफ झुल्लेआ ऽऽऽ बे ना···।

गीत के साथ ही उनकी सारी थकान दूर हो जाती है। मन और शरीर हल्के हो जाते हैं।

यह डोगरी लोक-गीत किसी अनपढ़ चरवाहे या किसी किसान आदि के मन की तहों में से निकले होंगे, जैसे किसी पहाड़ी कंदरा में से शीतल-निर्मल नीर की धारा बह निकलती है। तभी तो इन गीतों के बोल इतने सादा, हल्के और हृदय-स्पर्शी होते हैं। अनपढ़ होते हुए भी कितने भावुक होंगे वह देहाती शायर उनकी अन्तर-दृष्टि कितनी पैनी होगी। घिरे काले बादल निहारती किसी विरहिणी को देख कर डोगरी लोक-कवि के भीतर से यह बोल निकले होंगे—

काले बद्दल चढ़े शोमाना,
झूठे कोल कीते बे-इमाना······।"

कुर्बान जाएं उस शब्द-शिल्पी पर, जिसने आसमान को शोमाना बना दिया और किसी मनचले ग्रामीण कवि की बेबाकी और साफगोई मुलाहिज़ा हो, जिसने पिछड़े पहाड़ी इलाके के कच्चे कोठे में जन्मी और गरीबी के दमघोटू वातावरण में पली किसी 'अनारकली' से कहलवाया था :—

"खसम मरै रंडी रौह्‌ना, यार मरै कियां जीना हो······।"

पश्चिमी विद्वान कैनेथ रिचमांड ने, "पोइट्री आफ द पीपल" में भी कहा है। ग्राम गीत, देहाती लोगों के मन की गहराइयां मापने के देहाती पैमाने हैं।

हमारे लोक-गीतों की एक और विशेषता है, उनकी शब्द रचना में अनुप्रास का सुंदर प्रयोग। ग्रीष्म काल में कभी अपने हां पंखे की बड़ी कद्र थी। किसी लोक-कवि ने कैसे सम-तुक, सुन्दर शब्दों का प्रयोग किया है, 'पक्खी' के गीत में—

"पक्खी फेरचदी, घमघेरचदी। कन्ने ढेरचदी, लेई दिन्ना गे ?"

लोक-कथाओं की भान्ति डोगरी लोक-गीतों की संख्या अनगिनत है। जे० एंड के० कल्चरल अकादमी ने इस क्षेत्र में भी सराहनीय कार्य किया है। डोगरी लोक-गीतों के सोलह संग्रह उन्होंने छाप दिए हैं। योग्य और उद्यमी सम्पादक श्री ओम गोस्वामी की इस क्षेत्र की खोज अभी जारी है।

विद्वानों ने अपने-अपने प्रदेश के रीति-रिवाज अनुसार अपने लोक-गीतों का वर्गीकरण किया है। डोगरी लोक-गीतों का इस लिहाज से वर्गीकरण करना कुछ कठिन है, क्योंकि एक ही भाव अलग-अलग शब्द-रूप धारण करके अनेक लोक-गीतों में आता है, इसलिए मेल-जोल के आधार पर यह वर्गीकरण किया जा सकता है —

१. अनुष्ठानिक या संस्कार संबंधी।

२. उद्योग या मेहनत-मुशक्कत संबंधी गीत।

३. भक्ति तथा रोमानी गीत

४. समय संबंधी गीत

५. विधि गीत।

उपरोक्त वर्गीकरण में कुछ गीत स्थान नहीं पा सके। यथा बारां, हास्य रस के गीत आदि। इसलिए इस बांट में कमी-बेशी के लिए कपाट खुले हैं।

१. **संस्कार गीतों** में ठोआंऽ, जन्म, मुंडन तथा विवाह गीत, बेहाई, बधावे, घोड़ियां, सुहाग, सिठनियां, छंद और लुआह्‌नियां (मृत्यु गीत) आते हैं।

२. **उद्योग गीत** इनमें कृषि सम्बन्धी श्रम गीत (सुहाड़ी) और वनों में पेड़ काटना, गल्लर ढोना, चट्टानें तोड़ना आदि के गीत (गरलड्डी) और लाद्दी (छत्त पर मिट्टी डालने) के गीत आते हैं।

३. **भक्ति गीत** इनमें बिसनपते, भजन, आरती आदि के गीत, कारकें आदि आती हैं।

४. **समय संबंधी गीत** इनमें ढोलनू, ऋतु सबंधी गीत, बारामाह्‌ आदि आते हैं।

५. **विविध**—वारां, और हास्य रस संबंधी गीत आदि आते हैं।

लोक-गीतों के कुछ बोल

बेहाई : घर नन्द जी दे बज्जन बधाइयां, घर नंद जी दे।
बज्जन बधाइयां ते चढ़न कड़ाहियां······

बधावा भावी मेरी हीरा जम्मेआ, लाल जम्मेआ,
केह्‌ ननदा गी देगी बधाई, मेरी रानी भावी
ननदे, तेरे पैरें पिच्छें, ननदे तेरे भागे,

हरि ने मेरी कदर बनाई—
तूं मूंहां दा बोल हां ननदे। केह् लैंगी अज बधाई।

घोड़ी—ए घोड़ी मेरे लाल दी, बिंदराबना मंगाई ऐ।
मुल्लें मंगाई लाड़े दे बावल, हर हर बज्जी बधाई ऐ।

सुहाग—बाबल ! इक मेरा कैह्ना कीजिए।
मिगी राम रतन बर दीजिए ॥
जाइये बर आंदा में टोली के।
जियां केसर-कसुम्बा घोली के ॥

सिठनियां—भौर कश्मीरा दा आया, कश्मीरा दा आया,
जीजे दी माऊ गी भैनो, ठुंगा लाया।
ठूंगा लाया भैनो, जाला पाया···भौर कश्मीरा दा आया।

लुआह्नियां—(मृत्यु गीत)

(१) चंदन पेड़ बढ़ायो जी,
लम्मी पेड़ बनायो जी······।

(२) बुड्ढी मरी गेई हिड़की कन्ने।
टङा फसाई गेई खिड़की कन्ने।

सुहाड़ी—(श्रम गीत कृषि आदि)

१. सोहाड़ी सेइए रामा सोहाड़ी सेइए,
रामे रे बेला सीथीं भोंर दुखे खारे,
सोहाड़ी सेइए रामा, सोहाडी······(किश्तवाड़ का फसल गीत)

२. मक्कें दी गोडिया-से-ऊआ।
दम्में दी गोडिया-से-ऊआ।
लद्दे दी धारा—से—ऊआ।
पौन फुहारां—से—ऊआ······।

गरलोड्डी—(भारी पत्थर धकेलते, शहतीर लुढ़काते समय के गीत)

देआरा दा लट्ठा—होई सा
जोर लाओ कट्ठा—होई सा
ओ मेरे भाई—होई-सा
करो कमाई—होई-सा······।

भक्ति गीत (बिसनपते)

में, मेरी दे झगड़े अंदर
गल्ल नेईं भेती जाती,
दिया बलै दिन राती ॥

मन मायां दा मिरू बने दा
मारै नि अंदर झाती
दिया बलै दिन राती ।

समय संबंधी गीत (ढोलरू, ऋतु गीत)

ब्हारें फेरा पाया, बनें बोले न पखेरू,
फोगनै दी रित्त आई, पेइयां रुक्खें पौंगरां
लट भौरें कीती खौरै पर गुंजार,
ब्हारें फेरा पाया, बनें बोले न पखेरू ।

बारां—तलवार सोह्‌बदी मिएं दै हत्थ लोको,
पेटी सोह्‌बदी मिएं दै लक्क लोको,
मुच्छै पर पौंदे न त्रै-त्रै बट्‌ट लोको,
मुंहां पर पौंदी ऐ चेई-चेई रत्त लोको···
बाज सिंह नां जरनैलै दा·· (जरनैल बाज सिंह की बार)

माख—उच्चिया कोठिया, जित्त देआर नेईं ऐ ।
अपनियें मामें बाझा लोको प्यार नेईं ऐ ।।
सक्के पुत्तरा बाझा दिल हसदा नेईं ऐ ।
बगानिएं धिएं बाझा घर बसदा नेईं ऐ ।। ☐

आभार :—

१. आवर हैरिटेज—हुमायूं कबीर ।

२. संस्कृति के चार अध्याय—रामधारी सिंह 'दिनकर'

३. डुग्गर दा सांस्कृतक इतिहास (जे० एण्ड के० कल्चरल अकादमी जम्मू)

४. डोगरी लोक-कथा संग्रह—इक इंडिया मैह्‌ल, नाग बनी, बनें दियां मिंजरां आदि ।

————

रियासी : एक सांस्कृतिक परिचय

□ शिव दोबलिया

रियासी नगर एक प्राचीन तथा ऐतिहासिक पहाड़ी नगर है। रियासी का प्राचीन नाम सेर था। माड़ी, ग्रां, सुकेतर और सीला इन चार गांव से पाव-पाव (थोड़ी-थोड़ी) जमीन लेकर सेर बना। इसका बन्दोबस्ती में पहला नाम सेर था।

रियासी बसने मे पहले लोग 'सैपर' नाम के गांव में रहते थे। यह स्थान नम्बल और विजयपुर के मध्य में है। परन्तु अब इस के अवशेष भी दिखाई नहीं पड़ते।

रियासी नगर के पूर्व में एक खुला मैदान है। इसको लोग 'परेड ग्राऊंड' कहते हैं। राजाओं की सेनाएं इसी मैदान में शिक्षण के लिए अपने खेमे लगाती थीं। इस मैदान के पूर्व-दक्षिण की ओर एक प्राचीन किला है। किले की बनावट सुन्दर तथा पुखता है। इस किले में भीम देवता का मन्दिर था, भीम देवता की स्थापना किले के निर्माण से पूर्व की गई थी। इससे पहले यहां एक छोटी-सी कुटिया थी। भीम देवता के मन्दिर की स्थापना के उपरान्त इस स्थान को भीमगढ़ के नाम से जाना जाने लगा। यह किला २१ कनाल ७ मरले जमीन पर बना है।

रियासी का सारा इलाका 'मियां' दीवान सिंह जम्वाल का था, जोकि जम्मू राज्य का पुश्तैनी जागीरदार था। इस पर यह संदेह किया जाता था कि इसने जम्मू के राजा जीत सिंह की रानी (बन्दराली) ने षड्यंत्र करके जम्मू के राज-प्रबन्धक मियां 'मोटा' को मरवा दिया था। इसी कुकृत्य के लिए महाराजा रंजीत सिंह ने उसे लाहौर बुलाया और वहीं कैद कर दिया। रियासी की जागीर अपने अधीन कर ली और जागीर का नया पट्टा मियां गुलाब सिंह के नाम कर दिया।

मियां गुलाब सिंह उस समय जम्मू में था। उसे लाहौर दरबार की आज्ञा मिली कि रियासी जागीर पर अधिकार करे। तदनुसार गुलाब सिंह रियासी गया और रियासी के किला भीमगढ़ पर अधिकार कर लिया। तालाब के किनारे लोगों को एकत्रित कर दिया। सबने मियां गुलाब सिंह की अधीनता स्वीकार कर ली और नज़राने भेंट किये।

गुलाब सिंह जम्मू से ही ज़ोरावर सिंह को साथ ले आया था। यहां किले के रक्षक दल में सिपाही के तौर पर उसे भरती कर लिया गया।

रियासी में विद्रोह :

रियासी का पुराना जागीरदार मियां दीवान सिंह लाहौर में कैद था। उसका बेटा भूपदेव सिंह अरनास (जागीर रियासी) में था। उसने अपने आदमी एकत्रित कर, मियां गुलाब सिंह के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। अरनास के किले पर उसका अधिकार था। गुलाब सिंह भी इसके लिए तैयार था। भीमगढ़ से कुछ सिपाही साथ लेकर उसने अरनास पर आक्रमण कर दिया। भूपदेव भाग गया और गुलाब सिंह ने अरनास पर भी अधिकार कर लिया। इस आक्रमण में ज़ोरावर सिंह साथ था। उसकी वीरता और सूझ-बूझ का गुलाब सिंह पर अच्छा प्रभाव पड़ा।

रियासी के किले का अधिकारी दीवान अमीर चन्द को नियुक्त करके और गढ़ की मुरम्मत की आज्ञा देकर मियां गुलाब सिंह वापस लाहौर चला गया और अपनी ड्यूटी पर उपस्थित हो गया।

उधर भूपदेव भी अरनास से भाग कर लाहौर जा चुका था। कुछ दरबारी सरदारों से मिल कर अपने पिता दीवान सिंह को कैद से छुड़ाने में सफल हो गया। दोनों बाप-बेटा रियासी आ गए। रियासी के आस-पास अपने साथियों को जमा करके दीवान सिंह ने किला भीमगढ़ पर आक्रमण कर दिया। जागीर में भी गुलाब सिंह के विरुद्ध भावना को उभारा।

दीवान अमीर चन्द और ज़ोरावर सिंह ने अपने सिपाहियों के साथ किले की रक्षा की। मियां दीवान सिंह इसे जीत न सका और दु:खी होकर वापस लौट गया। गुलाब सिंह के पक्ष का मियां जवाहर सिंह अपने कुछ सिपाहियों के साथ रियासी में से गुज़र रहा था। दीवान सिंह ने उस पर आक्रमण कर दिया। इसकी सूचना किले में पहुंची। ज़ोरावर सिंह कुछ सिपाहियों के साथ जवाहर सिंह की सहायता को किले से निकल आया और दीवान सिंह को पीछे से आ घेरा।

दीवान सिंह के बहुत से आदमी इस लड़ाई में मारे गए। शेष भाग गए। बाप बेटा दोनों जान बचा कर भाग गए।

रियासी में शान्ति स्थापित हो गई। लोग ज़ोरावर सिंह की वीरता और वफादारी का गुणगान करने लगे। यह सूचना मिलने पर गुलाब सिंह लाहौर

से वापस रियासी आया। उसके आने से पहले ही रियासी जागीर में शान्ति स्थापित हो चुकी थी। लोगों में जोरावर सिंह की वीरता की चर्चा थी। गुलाब सिंह भी यह जानकर प्रसन्न हुआ और उसने न केवल इनाम दिया, बल्कि उसके रहने के लिए नए भव्य मकान का निर्माण करने की आज्ञा दी। यह भव्य मकान चिनाव नदी के किनारे विजयपुर में स्थित है। ज़ोरावर सिंह को हर ओर विजय प्राप्त होने से इस स्थान का नाम विजयपुर रखा गया। विजयपुर में राजपूतों के कुछ गिने-चुने घर हैं।

ज़ोरावर सिंह भीमगढ़ में एक सिपाही था। गुलाब सिंह की अनुपस्थिति में रियासी के विद्रोह को दबाने और कुछ रियासी जागीर में शान्ति स्थापित करने के लिए जो उसने किया था, उसका प्रभाव इलाके के लोगों तथा अमीर चन्द किलादार और मियां गुलाब सिंह सभी पर था।

ज़ोरावर सिंह गुलाब सिंह का विश्वासपात्र बन चुका था। बातों-बातों में एक बार ज़ोरावर सिंह ने बताया कि राशन की फिज़ूल खर्ची से लाखों रुपया बरबाद हो रहा है, यदि उचित प्रबन्ध किया जाये तो लाखों रुपया बचाया जा सकता है। बात गुलाब सिंह की समझ में आ गई। उसने उसी समय जम्मू से उत्तर की ओर जितने भी किले थे, सब में राशन देने तथा इसके निरीक्षण का अधिकार ज़ोरावर सिंह को दे दिया। सिपाही के रूप में ज़ोरावर सिंह आया था और निरीक्षण अधिकारी बन कर वापस लौटा।

इस प्रबन्ध में उसकी कुशलता और वफादारी के कारण मियां गुलाब सिंह उससे बहुत प्रभावित थे।

ज़ोरावर सिंह का रियासी के सारे इलाके पर बड़ा दबदबा था। एक बार ज़ोरावर सिंह लड़ाई पर लद्दाख जा रहा था। 'भनैडे' की बावली पर उन्होंने पानी पिया और लोटा वहीं छोड़ दिया, यह सोच कर कि पांच-छः महीनों के बाद जब भी वापस आऊंगा, यदि यह लोटा इसी स्थान पर पड़ा रहेगा तब समझूंगा कि मेरा यहां दबदबा है। लोग एक-दूसरे की चीज़ नहीं उठाते।

अभी वह मुश्किल से दो ही मील दूर गया होगा कि मिश्र जाति का एक बूढ़ा ब्राह्मण हांफते हुए ज़ोरावर सिंह के पास पहुंचा और लोटा लौटाते हुए कहने लगा—'यह आप का लोटा महाराज, इसे आप बावली पर भूल आये थे। ज़ोरावर सिंह ने उस ब्राह्मण से पूछा—'लोटा किस हाथ से उठाया था?'

ब्राह्मण ने उत्तर दिया 'दाहिने हाथ से।' ज़ोरावर सिंह ने अपनी तलवार से उस ब्राह्मण का दाहिना हाथ काट कर अलग कर दिया।

भारत की उत्तरी सीमा हिमालय की उत्तरी ढलानों से परे है। यह इस की प्राकृतिक सीमा है। हिमालय की तपोभूमि का चप्पा-चप्पा भारत के इतिहास का परिचय देता है। जब भी भारत में राजसूय यज्ञ या अश्वमेध यज्ञ कर के

कोई राजा 'इन्द्र पद' प्राप्त करने की चेष्टा करता रहा तो अपनी दिग्विजय में इसी सीमा तक पहुँचता रहा ।

महाराजा रघु, सम्राट मन्धाता, महाराज धर्मपुत्र युधिष्ठिर और उनके पश्चात आधुनिक इतिहास काल में चन्द्र गुप्त मौर्य, अशोक, समुद्र गुप्त आदि की दिग्विजयों के वर्णन इस बात के साक्षी हैं ।

गत शताब्दी में इसी परम्परा के अनुसार जनरल वज़ीर ज़ोरावर सिंह ने भारत की सीमा को मानसरोवर और कैलाश तक पहुँचा कर इस प्रयत्न में अपने प्राणों की आहुति देकर एक विलक्षण काम कर दिखाया । तिब्बत और चीन के साथ लगती यह सीमाएं जनरल वज़ीर ज़ोरावर सिंह की ही देन हैं । यह युद्ध उन्होंने तब लड़े जब सर्दी से बचने के कोई पर्याप्त साधन न थे । बर्फ-बारी से कड़ा मुकाबला, जलवायु की कठोरता, प्रबल शत्रु । ऐसी परिस्थितियों में उस वीर योद्धा ने भारतीय झंडा कैलाश पर्वत पर फहरा दिया ।

१८५० ई० में महाराजा प्रताप सिंह का जन्म रियासी में हुआ । अब भी यहां पुराने महाराजाओं का महल है जिसके अवशेष मात्र ही दिखाई देते हैं । जिस कमरे में महाराजा प्रताप सिंह का जन्म हुआ था उसको सुरक्षित रखा गया है, परन्तु आस पास की दीवारें ढह जाने के कारण इस कमरे को भी क्षति पहुँची थी परन्तु अब नये सिरे से दीवारें बना दी गई हैं ।

पूरी देखभाल न होने के कारण राजमहल और किला भीमगढ़ को काफी क्षति पहुँची है । सन् १९२५-२६ ई० में जब महाराजा हरिसिंह ने रियासी का पहला दौरा किया तो उन के साथ उनके ए० डी० सी० नवाब खुसरो जंग और 'वैकफील्ड' भी थे । खुसरो जंग ने किलों की एलबम देखकर बताया कि यह किला चित्तौड़ के २४ किलों में से एक ड्योढी का नमूना है । बाद में इसे तोड़ दिया गया, इस के अन्दर से गोला-बारूद, बन्दूकें और सिक्का बड़ी मात्रा में मिला, तलवारों को तुड़वाकर कुएं में और साथ बहती चिनाब नदी में फेंक दिया गया । दरवाज़े, खिड़कियां, शहतीर निकाल कर अरनास के कुछ दफतरों में लगाये गये । ज़मीन के नीचे तहखाने थे, जिस में सोने-चांदी की बहुत सारी ईंटें थीं । 'रघुनाथ सहाय' नाम के सिक्के थे, जो खच्चरों, घोडों और ऊंटों पर लाद कर शाही खज़ानों में ले जाए गए थे ।

किले के नीचे दक्षिण की ओर सलाल जल-विद्युत परियोजना का फोर्ट व्यू गैस्ट हाउस के ठीक नीचे 'अंजी' नाला बहता है । ऐसा कहा जाता है कि सामने 'दसानू' की पहाड़ियों में पांडव आकर बहुत समय तक गुप्त निवास करते रहे । यहां अर्जुन का एक मन्दिर भी है । दसानू के लोग अर्जुन को अपना देवता मानते हैं । यदि वर्षा न हो, 'अंजी' नाले में बाढ़ आ गई हो और नाला पार करना मुश्किल हो जाये या फिर घर में कोई छोटी-मोटी बीमारी हो तो यहां के

लोग अर्जुन देवता का नाम स्मरण करते हैं और मनौती मानते हैं । इसी प्रकार रियासी के लोग भीम सेन को अपना देवता मानते हैं ।

रियासी में एक पुराना तालाब था जिस में पशु पानी पीते थे । यह पानी पीने के लिए ही नहीं घर के दूसरे कामों में भी प्रयोग में लाया जाता था । इसे हाथ धोने वाला पानी कहते थे । पीने के लिए पानी 'बज़ीरें दी बाँ' नाम की बावली से लाते थे या फिर चश्मा 'सूला' से । यहां का पानी गर्मियों में ठण्डा और सर्दियों में गर्म होता है । पीने के पानी की कमी को देखते हुए विक्रमी सम्वत् १९६४ में रियासी में महाराजा प्रताप सिंह ने नल लगवाये, जिन पर कोई कर नहीं लिया जाता था । कुछ समयोपरान्त रियासी की उन्नति के लिए एक कमेटी बनी, इस कमेटी ने नलों पर टैक्स लगाया । इस से जो पैसा एकत्रित होता उसे रियासी के विकास पर लगाया जाने लगा ।

इस समय रियासी में छोटे बड़े ग्यारह मन्दिर हैं । काली माता का मन्दिर, गणेश मन्दिर, रघुनाथ मन्दिर, तालाब पर शिव मन्दिर, रघुनाथ मन्दिर कुएँ वाला, महादेव मन्दिर, राधा कृष्ण मन्दिर, नरसिंह मन्दिर और शीतला मन्दिर, हनुमान मन्दिर, भारत माता का मन्दिर और साथ शिव मन्दिर । इन सब में महादेव मन्दिर सब से पुराना है । रियासी के लोग बैसाखी के मेले का आयोजन यहीं करते थे । ज़ोरावर सिंह को जनरल वज़ीर की उपाधि मिल चुकी थी, जब जनरल वज़ीर ज़ोरावर सिंह लड़ाई जीतकर वापस आये तो इन्हें इन की देश भक्ति और अटूट साहस को देखते हुए विजयपुर में ५०४८ कनाल ज़मीन और 'नम्बल' में ४३८० कनाल जमीन बतौर इनाम मिली । विजय की इस खुशी में उन्होंने बैसाखी का मेला महादेव मन्दिर के सामने नहीं, अपने घर के पास विजयपुर में लगवाया । मेला लगते ही महादेव के मन्दिर में स्थित शिव लिंग में दरारें आ गईं और उन में से लहू बहने लगा—ऐसी किवदंती सुनने में आती है । मेले की समाप्ति के उपरान्त रात को जनरल वज़ीर ज़ोरावर सिंह को सपने में भगवान शिव ने बताया कि कल मेला मेरे पुराने स्थान पर लगाना होगा अन्यथा परिणाम बुरा होगा । दूसरे दिन बैसाखी का मेला महादेव जी के स्थान पर लगाया । अब भी उसी स्थान पर मेला लगता है ।

प्राचीन मन्दिरों में दूसरा मन्दिर काली माता का मन्दिर है । यह मन्दिर एक पहाड़ी पर स्थित है । किवदंती है कि यहां पहले घना जंगल था और यह मन्दिर कांटेदार झाड़ियों से बना था । मन्दिर के सामने एक शेर कुत्ते की भान्ति बैठा रहता, परियां नाचतीं, शिव और पार्वती भी कभी-कभी आते थे ।

बाद में महाराजा प्रताप सिंह ने काली माता के मन्दिर के साथ ८० बीघा ज़मीन लगा दी और यह ज़मीन जगतराम जी के नाम पटे पर लिख कर दी । इस में ४० कनाल उपज के लिए है और ४० कनाल गाय के घास के लिए है । मन्दिर के पूजा-पाठ के लिए धूप, दीप और प्रसाद के लिए ५ रुपये महीना

लगाया था। मन्दिर के सामने एक पीपल का वृक्ष है जो लाल भैरव का स्थान है। मन्दिर के अन्दर काली माता एक काली शिला के रूप में स्थित है। मन्दिर के बाहर चारों कोनों पर कालीबीर, शेषनाग पर विष्णु भगवान, शिव-पार्वती, गोपियों की मटकी तोड़ते श्री कृष्ण, राम-लक्ष्मण-जानकी, कच्छ-मच्छ अवतार, वामन, कूर्म अवतार की मूर्तियां चार कोनों पर बनी हुई हैं। मन्दिर के सामने महावीर हनुमान और दरवाज़े पर श्री गणेश, दहलीज़ पर काल-भैरव और आसपास शेर की प्रस्तर मूर्तियां बनी हुई हैं। इस समय मन्दिर के प्रवेश द्वार पर दोनों ओर शेरों की भव्य मूर्तियां बनाई गई हैं। यह एक रमणीक स्थान है। यहां लोग रविवार और मंगलवार को दर्शनों के लिए आते हैं। कुछ श्रद्धालु भक्त नंगे पांव आते हैं और अपनी-अपनी मनौती चढ़ाते हैं। रविवार और मंगलवार को बड़ी भीड़ लगी रहती है। लोग मनौती मानते हैं और पूरी होने पर बर्फी, पेड़ा, बब्बरू, गुड़ हलवा, सोने, चांदी के छत्र और हार चढ़ाते हैं।

रियासी में एक ही कुआं है। श्री सरबन दास जी ने मन्दिर बनवाने के साथ एक कुआं भी बनवाया। इस मन्दिर को 'रघुनाथ मन्दिर खूह वाला' कहते हैं। यह मन्दिर लगभग २०० वर्ष पुराना है।

विक्रमी सम्वत् १९६० में रियासी को ज़िला बना दिया गया। उस समय ज़िला रियासी की सीमा (बटेंके की बावली) ऊधमपुर से चार मील पहले से आरम्भ होती थी और नंदीमर्ग पटवार तक थी। जिस की सीमा तहसील कुलगाम के साथ लगती थी। ज़िला राजौरी का सारा इलाका रियासी के अधीन था।

रियासी ज़िला के साथ पहाड़ी क्षेत्र होने के कारण रियासी, पहाड़ी वस्तुओं की एक बड़ी मण्डी थी। उस समय रियासी में डेढ़-दो सौ दुकानों का एक बड़ा बाज़ार था। जिसे आज कल पहाड़ी बाज़ार कहते हैं। यहां गुल-बनफशां बर्ग, बनफशां ड्रेंकड़ी, हरतालिका, धूप लकड़, धूप संगल, बाल तंग, कौंड़, पतरीस, बाला, चोक, (एरबी) सुरबां, शहद, राजमाश, घी, बहीदाना, अखरोट, गुच्छियां, सेब, नाशपाती, खुमानियां, अनारदाना की एक बड़ी मण्डी थी। रियासी के पहाड़ खनिज पदार्थों से भरे पड़े हैं। सलाल और भारख में लोहे की खानें हैं। यहां लोहा साफ भी किया जाता था। बावा जित्तो की ऐतिहासिक कटार 'भारख' के लोहे से बनी थी। यहां जस्त अलमोनियम सुरमे की खानें हैं। रियासी से आठ मील दूर उत्तर पूर्व की ओर देवी गढ़ के पास 'द्रावी' नामक स्थान से सुरमा निकल कर रियासी के बाजार में बिकने के लिये आता था। रियासी के चारों ओर चूने का पत्थर भारी मात्रा में मिलता हैं। यहां बहुत-सी चूने की भट्ठियां हैं। रियासी में मुसलमान लोग—राज मिस्त्री, बर्तन की दुकानें, मरासी, बहुरूपिये, कुम्हार, लोहार, धोबी आतिशबाजी बनाने बनाने का काम किया करते थे।

रियासी में इस समय दो मस्जिदें हैं। पुरानी मस्जिद का नाम जामअ-मस्जिद है। जिसे मियां निजामुद्दीन वज़ीरे आजम राजा मोती सिंह पुन्छ ने बनवाया। मियां नजामुद्दीन ने रियासी में सीला-माड़ो जागीर खरीद ली, और अपने रहने के लिये रियासी में एक बड़े भवन का निर्माण करवाया। जिस के १०० से अधिक कमरे थे। इसी समय इन्होंने जामअ मस्जिद का निर्माण करवाया। जामअ मस्जिद एक भव्य भवन था। भवन के ऊपर दोनों कोनों पर ऊंचे-ऊंचे मीनार थे। सफेद चूने से बना यह भव्य भवन चमकता हुआ अपनी ओर आकर्षित करता था। परन्तु समय के थपेड़ों ने जामअ मस्जिद को खण्डहर में परिवर्तित कर दिया। परन्तु रियासी के लोगों ने इसे पुनः जीवनदान दिया। छत्तों पर टीन की चादरें लगाई गईं, छोटी-बड़ी मुरम्मत के उपरांत फिर से श्रद्धालु भक्तों के लिये खोल दी गई। दूसरी मस्जिद रियासी के लोगों ने बनवाई है। रियासी नगर कभी भी साधु महात्मा, पीर फकीरों से खाली नहीं रहा। 'साईं शफा' जैसे पीर फकीरों ने यहां जन्म लिया। साईं शफा लोहार परिवार से थे। अभी इन्होंने अपनी युवावस्था की दहलीज पर पांव रखा ही था कि एक बार चोरी के इलज़ाम में पकड़े गये। कारावास भी हुआ। यह उनके जीवन की पहली घटना थी। इस घटना से साईं शफा का मन दुनिया से ऊब गया, उसी दिन से मन में वैराग्य पैदा हो गया। वह फकीर बन गये। लोगों के लिये गुणकारी सिद्ध हुए। जिसे जो बात कह देते पत्थर की लकीर की तरह अटल हो जाती। फूंक मार कर कई बीमारियों से मुक्ति दिलवा देते। यदि कोई गरीब पैसा मांगने आता उसे अपने नीचे बिछे आसन से निकाल कर देते। दुःखों के निवारण करने वाले साईं शफा के पास एक बार लद्दू शाह जो रियासी के रहने वाले थे, सन्तान के लिये पहुँचे। साईं शफा ने लद्दू शाह के सिर पर एक मन भारी पत्थर रख कर धूप में खड़ा कर दिया। कुछ समय तक तो लद्दू शाह धूप में भारी पत्थर उठा कर खड़े रहे, बाद में चीखने-चिल्लाने लगे, आँखों में आँसू देख साईं शफा ने पत्थर फैंकवा दिया और कहा "जाओ लड़का होगा।" ठीक नौ महोने बाद उन्हें पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई।

साईं शफा रियासी के विषय में अक्सर कहते—"हैगा दिल्ली बनी गी" अर्थात् रियासी एक दिन दिल्ली बनेगी। रियासी से बिड्डा तक के रास्ते में दीपक जलेंगे। आज यहां सलाल विद्युत परियोजना के बनने से साईं शफा के वचन सत्य सिद्ध हुए--रियासी के लोगों का ऐसा विश्वास हैं।

नौ-बाबा—नौ-बाबा गांव चकवाल (पंजाब) के रहने वाले थे। चकवाली बोली बोलते थे। एकान्त स्थान ढूंढ़ते-ढूंढ़ते वह रियासी की ओर आये और चिनाब के किनारे रियासी से चार मील दूर सुत्री नामक स्थान पर एक गुफा में उन्होंने अपने बैठने की व्यवस्था कर ली और वहीं पर रहने लगे। यद्यपि इस गुफा तक पहुँचने का कोई रास्ता नहीं है, केवल नदी पार करके ही जाना पड़ता है।

रियासी के आस-पास रहने वाले गुज्जर लोग नदी पार करके पहाड़ों से घास लाते हैं और गाय भैंस पालते हैं। एक बार चार-पांच गुज्जर चिनाब नदी पार से घास काट कर ला रहे थे। चिनाब नदी पार करने के लिये शहतीरियों का बेड़ा बना कर आ रहे थे। बेड़ा पानी में एक स्थान पर फंस गया, कड़े परिश्रम के उपरान्त भी वह बेड़े को वहां से निकाल न पाए। पास ही कोने में एक बड़ा पत्थर था। एक गुज्जर छलांग लगा कर उस चट्टान पर चढ़ गया। सामने एक गुफा थी वह उस गुफा में प्रवेश कर गया। गुफा में प्रवेश करने पर वह जोर से चीखा और भाग कर बेड़े पर आ गया। साथियों के पूछने पर उसने बताया कि गुफा में एक ऐसा शरीर पड़ा है जिस की टांगें अलग हैं, बाहें अलग पड़ी हैं। सिर शरीर से अलग-थलग पड़ा है और वह सब हिल-डुल रहे हैं। टांगें कभी खड़ी हो जाती हैं, कभी बैठ जाती हैं।

बाँहें अपने ढंग से हिलती हैं। होंठ हिल रहे हैं। आँखें चारों ओर देख रही हैं। यह सब अद्भुत चमत्कार देख कर मेरे मुंह से चीख निकल गई। ऐसा सुनकर सभी गुज्जर हिम्मत बटोर कर यह सब देखने के लिए गुफा के अन्दर गये। वहां उन्होंने देखा कि कुछ भी नहीं था, केवल एक साधु आँखें बन्द किये बैठा था। उस साधू फकीर ने आँखें खोल कर उन गुज्जरों से आने का कारण पूछा। गुज्जरों ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया और अपनी व्यथा सुनाई। नौ-बाबा ने गुज्जरों को बेड़े पर बैठ जाने को कहा। बाबा के आदेशानुसार गुज्जर बेड़े पर बैठ गये। तभी बाबा ने गुफा से एक बांस निकाल कर बेड़े को धक्का दिया, बेड़ा दूर नीचे नम्बल गांव में आकर रुका। इस घटना का पता चलते ही रियासी के श्रद्धालु भक्त लोग नौ-बाबा को रियासी ले आये। नौ-बाबा के विषय में कई लोक-कथाएं प्रचलित हैं।

एक बार ख्वाजा अमकल्ला शाह दुकानदार रियासी का पोता बीमार हो गया, वैद्य हकीमों ने मरा घोषित कर दिया परन्तु लोगों का विश्वास था की यदि एक नजर नौ-बाबा देख लें, तो यह ठीक हो सकता है। घर में पूरा परिवार रो रहा था, इतने में नौ-बाबा वहीं आ पहुँचे। उन्होंने बिस्तर पर पड़े जीवन के अन्तिम श्वास गिन रहे उस बच्चे की ओर एकटक देखा, और तुरन्त बाहर चले गये। उन के बाहर जाते ही उसी क्षण बच्चा बिस्तर से उठकर बैठ गया।

नौ-बाबा सात फुट लम्बे भारी-भरकम शरीर, बड़ी-बड़ी डरावनी आँखें, हाथ में बाँस का डंडा लेकर अपने स्थान से जब प्रातः निकलते, तो कोर्ट कचहरी की गली से होते हुए पूरी रियासी का चक्कर लगाते। लोगों की यह धारणा थी कि नौ-बाबा जिसे अपनी छड़ी से पीट देते हैं, वह कोर्ट कचहरी से छूट जाता है। केस उस के हक में हो जाता है। लोग अक्सर उन के आगे-पीछे घूमते रहते। होनी-अनहोनी सब बता देते। १९४७ ई० से कुछ दिन पहले नौ-

बाबा गम्भीर मुद्रा में रहने लगे। रियासी तालाब के साथ छप्पड़ के किनारे सारा-सारा दिन कबरें बनाते और फिर तोड़ देते, दिन भर यही काम करते। बात बहुत कम करते। 'क्वेटा' (इस समय पाकिस्तान) में जब भूंचाल से त्राहि-त्राहि मची तब इन्हें वहां देखा गया था।

रियासी के पास सलाल जल विद्युत परियोजना के बनने से रियासी में एक बार फिर खुशहाली आ गई है। पहाड़ी बाज़ार की हालत अभी भी नहीं सुधर पाई है। आज भी पहाड़ी बाज़ार की टूटी-फूटी दुकानों को देख कर रियासी की उस समय की खुशहाली का अन्दाज़ा लगाया जा सकता है—जब यह एक बड़ी मण्डी थी।

रियासी के लोग बड़े श्रद्धालु, भक्त और दयालु प्रवृत्ति के हैं। इनके कुल देवता—म'ल्ल देवी, काली माता, कालीबीर, बावा भैड़, बावा बिड्डा, भीमसेन और अर्जुन हैं। यह लोग खिलका कुर्ता, चूड़ीदार पायजामा, बास्काट, लम्बा कोट, पगड़ी और सफेद चद्दर रखते हैं। औरतें चूड़ीदार पायज़ामा (सुत्थन), लम्बी कमीज़ और सिर पर दुपट्टा लेती हैं। पुराने ज़माने में घूंघट का बड़ा रिवाज था। विवाह छोटी उम्र में कर दिया जाता था, दोहरी का बड़ा रिवाज था।

रियासी के लोग लोहड़ी, होली, रक्षाबन्धन, टिक्का, दीवाली, दंगल (छिंझ), दशहरा, जन्माष्टमी, बसन्त पंचमी, बैसाखी बड़े हर्षोल्लास से मनाते हैं। छिंझ (कुश्ती) पर यह लोग बहुत पैसा खर्च करते हैं। दूर-दूर से पहलवानों को बुलाया जाता है।

रक्षा बन्धन पर पण्डित-पुरोहित अपने यजमानों को राखी बांधते हैं।

रियासी के चारों ओर पहाड़ हैं, साथ ही चिनाब नदी बहती है। यहां से माता वैष्णो का पहाड़, वहां जलती बिजली की रोशनी साफ दिखाई देती है। रियासी एक खुला मैदान-सा है। गन्दुम, मक्की, धान, दालें, अदरक यहां की खास पैदावार है। □

डोडा : एक सांस्कृतिक परिचय

☐ मुहम्मद असदुल्ला वाणी

प्राचीन काल में कश्मीर की घाटी के तीन बड़े इलाकों के नाम मिराज, यमराज और कमराज थे। इन नामों से मेल खाता हुआ पीर-पंचाल के इस पार पोगल-परिस्तान और रामबन से लेकर चिनाब के तट पर फ़ैले हुए किश्तवाड़ तक के इलाके का नाम सिराज था। जो यहां के लोगों में आज भी इसी तरह मशहूर है। साठ-सत्तर मील लंबा और पंदरह-बीस मील चौड़ा यह सारा इलाका सिराज कहलाता है—जिसका आशय शिव राज्य[1] है। इस इलाके के एक प्रसिद्ध स्थान का नाम डोडा है।

डोडा को इस समय ज़िला के प्रधान नगर का दर्जा प्राप्त है। यह दरिया चिनाब के उत्तर-पूर्व की ओर एक पहाड़ी के मध्य स्थित है। जिसका ऊपरी भाग 'लाल द्रमन' कहलाता है जोकि एक स्वास्थ्यवर्धक स्थान है। डोडा किश्तवाड़ के राजाओं की सर्दियों की राजधानी थी, जिसकी सीमाएं वनिहाल तक फैली हुई थीं।

पुराने ज़माना में डोडा का नाम "नगर" या "नगरी" था जबकि यहां पर कुछेक घराने ही आवाद थे आज भी नगरी नाम का एक मुहल्ला डोडा के पूर्व की ओर स्थित है।

डोडा का एक नाम फरीदाबाद भी है। डोडा का यह नाम हज़रत फरीद उद्दीन बगदादी के नाम की बिना पर पड़ा। जब हज़रत फरीद-उद्दीन बगदादी अपने प्रचार हेतु सफर पर बगदाद से किश्तवाड़ की ओर चले तो इस सफर के दौरान उन्होंने नगरी के निकट एक स्थान पर विश्राम किया और लगभग पांच दिन तक यहां रहे। नगरी में इन के अस्थाई निवास के दौरान वहां के स्थाई

१. इस संबंध में ग्रियर्सन ने लिखा है—The word Siraj means the kingdom of Shiva and hence any wild mountainous country. (linguistic survey of India vol. VIII Part II P. 433).

निवासियों ने न सिर्फ उनकी आवभगत की बल्कि वहां के नंबरदार ने अपनी लड़की का इनके साथ निकाह भी कर दिया । वहां के लोग हज़रत फरीद-उद्दीन बगदादी के अध्यात्मवाद और नैतिक मूल्यों से इस कदर प्रभावित हो गये कि उन्होंने इस मुहल्ले का नाम नगरी के स्थान पर इन के नाम पर फरीदाबाद रखा । इस प्रकार डोडा का नाम फरीदाबाद पड़ा परन्तु डोडा की तरह इस नाम को सर्वप्रियता न मिल सकी निस्संदेह नगरी मुहल्ला से पहले ही एक नया मुहल्ला आबाद हो रहा है जिसका का नाम फरीदाबाद रखा गया है । बहुत से लोग हज़रत फरीद-उद्दीन बगदादी पर श्रद्धा रखने की वजह से डोडा के सारे कसबे को फरीदाबाद ही लिखते हैं और पत्र-व्यवहार के अतिरिक्त दुकानों के बोर्डों और इश्तिहारों में भी यह नाम देखने में मिलता है ।

डोडा के मौजूदा नाम ''डोडा'' के बारे में मशहूर है कि यह नाम यहां पर पोस्त की काश्त की वजह से मशहूर हो गया है चूंकि डोडा की भूमि पोस्त की काश्त के लिए बहुत ही उचित और योग्य है और जब यहां के लोगों ने पोस्त की काश्त शुरू की तो पोस्त के डोडों[1] की वजह से इस बस्ती का डोडा कहा जाने लगा जोकि अब तक प्रचलित है ।

डोडा के इस नाम के बारे में लेखक को प्रोफ़ैसर डॉ० प्रियतम कृष्ण कौल के माध्यम से मालूम हुआ कि यह नाम डोडा, मांड ठठेरे की वजह से मशहूर हुआ है । डोडा पुराने ज़माना में शिल्प-कला का बड़ा प्रसिद्ध केंद्र रहा है । यहां पश्मीना साज़ी, बर्तन बनाने, खताती के फन और कालीन बनाने के इलावा दूसरी कलाओं के माहिर और हुनरमंद आबाद थे, जिन्हें उस वक्त के राजाओं ने बाहर से लाकर यहां आबाद किया था । ऐसे ही हुनरमंदों में से एक शख्स डोडा मांड था जो मुलतान का रहने वाला था और राजा ने उसे इस बस्ती में आबाद किया । यह शख्स पेशे से ठठेरा था परन्तु अपने फन में निपुणता रखता था । अतएव इसी के नाम यानी डोडा[2] से बिगड़ते-बिगड़ते इस बस्ती का नाम डोडा पड़ गया ।

डोडा कसबा दरिया चिनाब के दायीं ओर आबाद है सतह समुंदर से तकरीबन 3800 फुट की ऊंचाई पर स्थित है । यहां गर्मियों में ज़्यादा गर्मी नहीं पड़ती । और सर्दियों में भी ज़्यादा सर्दी नहीं पड़ती । पूरी तहसील लगभग एक लाख तक की है । चूंकि यह स्थान ज़िले का मुख्यालय है इसलिए इसकी तहसीलें डोडा, भद्रवाह, ठाठरी, बनिहाल, गुंधो, रामबन और किश्तवाड़ आदि हैं ।

---

१. पोस्त की काश्त अब एक मुद्दत से कानूनन बंद कर दी गई है ।

२. नक़ल शजरा नसब श्री तारा सिंह डोडा अज़ मुहाफ़ज़ खाना ऊधमपुर जनरल रिकार्ड बंदोबस्त रजिस्टर नं० ११७० सवाल २ फागन, २००३ वि० त्यार ४ फागन तकसीम १६ फागन ।

डोडा का मौजूदा कसबा सही मायनों में चार हिस्सों में बंटा हुआ है। दरिया चिनाब के बायें किनारे पर आबाद एक छोटी-सी बसती है, परंतु एक महत्वपूर्ण पड़ाव पुल डोडा है। यहां से भद्रवाह, किश्तवाड़, ठाठरी और डोडा को रास्ता जाता है। बुन डोडा दरिया के दायीं ओर मौजूदा डोडा की बस्ती का निचला हिस्सा है। मध्यवर्ती भाग और फिर ऊपरी हिस्सा जो तकरीबन ढलान पर आबाद है। डोडा वास्तव में पुल डोडा को छोड़ कर बाकी तीन हिस्सों का नाम है। डोडा कई मुहल्लों में तकसीम है, जिन में प्रमुख मुहल्लों के नाम नगरी, फरीदाबाद, आस्तान मुहल्ला, गत्तू मुहल्ला, अकरम आबाद, शनाल मुहल्ला, सराए मुहल्ला, जामा मस्जिद मुहल्ला और बुन डोडा वगैरह हैं। डोडा के हर मुहल्ले में मस्जिद तामीर की गई है। यहां पांचों वक्त नमाज अदा की जाती है। सब से महत्वपूर्ण एवं दर्शनीय यहां की जामअ मस्जिद है, जो दो मंज़िला है जिसके (ऊंचे) मीनार डोडा, भद्रवाह, किश्तवाड़ की ओर जाने वाले को खलैनी नाम के स्थान से थोड़ा पहले ही बल खाती हुई सड़क पर अठखेलियां करती हुई गाड़ी में से ऐसे दिखते हैं जैसे वह मुसाफिर का स्वागत कर रहे हों। इस मस्जिद की वास्तुकला नई और सादा है। वास्तुकला के आधार से कोई खास बात उल्लेखनीय नहीं है। हां यह बात अवश्य है कि मौजूदा आबादी के लिहाज से अब यह मस्जिद नमाज़ियों के लिए नाकाफी हो गई है। मस्जिद के साथ ही गुस्लखाने और एक खुला सहन भी है। निचली ओर एक कब्रिस्तान है।

मस्जिद मुहल्ले में ही बीच बाज़ार से गुजरने वाली सड़क के किनारे पर जामा मस्जिद से ज़रा दूर एक मंदिर है। इसकी वास्तुकला में भी कोई बात उल्लेखनीय नहीं है। यह मंदिर भी सादगी का प्रतीक है। मुहल्ला साही में सिखों का एक गुरुद्वारा भी मंदिर और मस्जिद की भांति वास्तुकला के लिहाज़ से सादा ही है। डोडा के कसबे में सुबह के वक्त मस्जिदों के मीनारों से गूंजने वाली मधुर मगर नींद को त्यागने पर मजबूर करने वाली अज़ान, मंदिर से प्रभु के आलाप के साथ-साथ घंटियों की गूंज और गुरुद्वारे से गुरुवाणी का पाठ एक समय बांध देते हैं। ऐसे में एक सादा इन्सान एक तिकोन में बंट कर रह जाता है।

डोडा के मुहल्ला आस्तान में एक आलीशान खानकाह है जिसे यहां के लोगों ने निर्मित किया है। यह खानकाह उस जगह तामीर की गई है, यहां हज़रत फरीद-उद्दीन बगदादी ने किश्तवाड़ जाते समय सफर के दौरान विश्राम किया था। यहां हर बृहस्पतिवार को लोगों की काफी भीड़ रहती है। यहां इन दिनों में उर्स मनाया जाता है जिन दिनों में किश्तवाड़ में होता है खास कर आषाढ़ को। यह खानकाह जनसाधारण की कामनाओं का केंद्र और बिना जातीय भेद-भाव व नसल और रंग हर मजहब के लोग श्रद्धा के साथ यहां आते हैं। चूंकि हज़रत फरीद-उद्दीन बगदादी के साथ उस वक्त के नंबरदार ने

अपनी बेटी मलाहता बानो ब्याही थी, इस खानकाह के लिए यहां उस समय से जगह-जगह ज़मीनें ईश्वरापर्ण चली आ रही हैं और यहां के हिन्दू लोग इसलिए भी इस खानकाह का सन्मान करना उचित समझते हैं कि मलाहत बानो इनके ही खानदान की बेटी थीं। चुनांचे यह लोग अपनी ज़मीनों से पैदा होने वाला अनाज तक नहीं खाते, जब तक वह अपने रिवाज के अनुसार यहां नज़रो न्याज़ पेश न करें।

खानकाह की वास्तुकला आम और सादा है। यहां खानकाह के साथ ही फरीदिया इस्लामिया हाई स्कूल बनवाया गया है और साथ ही एक मस्जिद भी है।

प्रकृति ने डोडा को मनोहर दृश्यों एवं खूब-सूरत पहाड़ी सिलसिलों की बदौलत, हुसन एवं सौंदर्य का एक हसीन मिश्रण प्रदान किया है। यह भू-भाग प्राचीन समय से ही सभी धर्मों के अनुयाइयों की रिहायशगाह रहा है। यहाँ के मेले और त्योहार जम्मू और कश्मीर के अन्य भागों की भांति ही मनाए जाते हैं। यह त्योहार बैसाखी, होली, ईद, दीवाली, गुरुपर्व, शिवरात्री, जन्माष्टमी, लोहड़ी, रामलीला, दशहरा, सिंह संक्रांति एवं दूसरे अन्य प्रसिद्ध त्योहार हैं।

इन मेलों और त्योहारों के अतिरिक्त ज़िला डोडा के अन्य भागों में कई दूसरे स्थानीय त्योहार और मेले भी मनाए जाते हैं, जिनकी अपनी एक अलग से पहचान है। परन्तु यहां तक खास कसबा डोडा का संबंध है यहां इस प्रकार का कोई खास और महत्वपूर्ण त्योहार नहीं मनाया जाता, हां कुछ छोटे-छोटे त्योहार अवश्य मनाए जाते हैं जिनकी अपना स्थानीय महत्व है।

उर्स शाह फरीद-उद्दीन बगदादी-हज़रत शाह फरीद उद्दीन बगदाद के निवासी थे ? वे मुग़ल शासन काल में हिंदुस्तान आए और राजा जय सिंह के समय में इस्लाम का प्रचार करने के लिए किश्तवाड़ जा पहुँचे। आप एक प्रतिष्ठित रुहानी बजुर्ग थे। कशफ ओ करामात में आप को एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। इस्लाम का प्रचार आप की बजुर्गी, परहेज़गारी मोह-माया का त्याग और रुहानी गुणों के आधार पर अत्यधिक सफल रहा। आप के इख्लाक और स्वभाव से जनता बहुत प्रभावित हुई। अपने सफ़र के दौरान आप ने जहां-जहां भी विश्राम किया वहां के लोग काफी तादाद में इस्लाम के दायरे में आ गए। अपने सफर के दौरान आप ने डोडा की प्राचीन बस्ती नगरी के करीब विश्राम किया। स्थानीय लोग आप के वर्ताव से इस प्रकार प्रभावित हुए कि गांव के नंबरदार ने अपनी बेटी का विवाह आप से कर दिया। और स्वयं भी कई लोगों के साथ इस्लाम कबूल किया। हज़रत शाह साहब ने नंबरदार का इस्लामी नाम नूर अली रखा और बेटी ने मलाहत बानो नाम पाया।

हज़रत शाह साहब नगरी के करीब जिस स्थान पर रहे, वहां लोगों ने बाद में एक खानकाह तामीर की यहां इनका उर्स प्रति वर्ष आषाढ़ को मनाया

जाता है। बाद में इस स्थान का नाम आस्तान मुहल्ला पड़ गया। इस आस्ताने या खानकाह पर हर जुमारात के अलावा सुबह-शाम भी काफी चहल-पहल रहती है।

फसली त्योहार—कस्बा डोडा और उसके आसपास के किसान लोग शरद ऋतु के अंत पर प्रति वर्ष, नये वर्ष, की जिमींदारी शुरू करने के दिन को एक त्योहार के तौर पर मनाते हैं, जिसे यहां की स्थानीय भाषा सिराजी और भद्रवाही में धर्म दिवस या गोंगल (ग्वंगल) कहते हैं। कश्मीरी भाषा जानने वाले 'सोंथ' कहते हैं। यह दिन प्रायः चेत के महीने में अपने-अपने धर्म और मज़हब के अनुसार विभिन्न तिथियों और दिनों को मनाया जाता है। इस दिन जिमींदार के हां ईद जैसी खुशी होती है। प्रातःकाल बैलों को गुड़ और घास खिला कर घर का वड़ा बजुर्ग इनको हल में जोतता है। चंद फराटे भरने के पश्चात् खुदी हुई जमीन की मिट्टी की विभिन्न स्थानों पर तीन ढेरियां बनाई जाती हैं। जिमींदार मौसमों या महीनों के नाम पर इन ढेरियों के तीन नाम रखते हैं। इसके उपरान्त इन ढेरियों पर पकाए हुए चावलों के दाने या रोटी की छोटी-छोटी टिक्कियां रखी जाती हैं। फिर दूर से देखा जाता है कि कौवा या मुर्गा बगैरा सबसे पहले किस ढेरी से खाएगा। बस जिमींदार फसल बोने के लिए उसी क्रम से महीनों को चुनेगा। इस दिन सभी जिमींदारों के हां काफी गहमा-गहमी रहती है। और सब रिश्तेदार एवं पड़ोसी आदि आते हैं और कई प्रकार के पकवान खाते हैं। यह त्योहार अब नयी तालीम आम होने से समाप्त प्रायः होता जा रहा है।

यात्तरें और कुड्ढ—यात्तरों का त्योहार डोडा के पास-पड़ोस में भादों और असूज के महीनों में मनाया जाता है। यह त्योहार भी फसली है और फसल की कटाई के समय मनाया जाता है। लोग गांव-गांव यात्रायें निकालते हैं। और अपने-अपने मंदिरों में देवताओं की पूजा होती है। विभिन्न स्थानों पर रात को कुड्ढ होता है। यह रतजगा सुबह तक जारी रहता है। लोग ढोल, बांसुरी और बाजे बजाते हैं। रात भर आग जला कर उसके गिर्द दायरे में स्थानीय लोक-नाच कुड्ढ का आयोजन किया जाता है। भद्रवाही और सिराजी में गाने गाए जाते हैं। रात-भर दुकानें सजी रहती हैं और यह सिलसिला सुबह तक जारी रहता है। सुबह पौ फटने से पहले ही चेले आग के इन दहकते अंगारों को मस्ती और आनंदित होकर नाचते हुए बिखेर देते हैं जो रात-भर इसीलिए जला कर तैयार किये जाते हैं। इसके पश्चात् वे मंदिर की ओर चले जाते हैं यहां वे पूजा-पाठ और भजन-कीर्तन करने के उपरांत वापस घरों को लौटते हैं। इन त्योहारों को भी विभिन्न स्थानों पर विभिन्न दिनों में मनाया जाता है। यह हिन्दुओं का त्योहार भले ही हो, परन्तु इसे देखने सभी लोग जाते हैं। इन त्योहारों को यात्तर, यात्रा या कुड्ढ कहा जाता है।

यह मेले और त्योहार यहां की सामाजिक, धार्मिक एवं सामूहिक ज़िंदगी की एक महत्त्वपूर्ण झलक प्रस्तुत करते हैं। यह आपसी भाईचारे, मेल-जोल और एकता की पहचान हैं।

यहां तक जिला डोडा के लोगों की परम्पराओं और रसमो-रिवाज का संबंध है, वे लगभग जम्मू प्रांत के अन्य भागों के साथ मिलते-जुलते हैं। यहां के लोग कुदरती तौर पर बहादुर, गैरतमंद और आज़ाद-ख्याल व्यक्ति हैं। मेल-जोल, भाईचारा एकता तथा इत्तफाक मेहनत इनकी रग-रग में है। शायद यही कारण था कि "महाराजा रंजीत सिंह ने गुलाब सिंह को नसीहत की थी कि सिराजी अगरचा सादा लोह इन्सान हैं। परन्तु अपनी इच्छा इन पर थोपने की कोशिश न करना कि बिगड़ जायें और सारी प्रजा के लिए खतरा बनें।"[1]

यहाँ के लोग सादा और शरीफ हैं। मुसलमानों की भाषा कश्मीरी है। वह सिराजी के अतिरिक्त दूसरी डोगरी, पंजाबी वगैरह भाषाएं भी जानते और बोलते हैं। कुछ आस-पास की बस्तियों में मातृ-भाषा सिराजी भी बोली जाती है। हिन्दुओं में आम सिराजी भाषा बोली जाती है और मुसलमानों की भांति यह भी दूसरी भाषाएं समझते और बोलते हैं यानि कश्मीरी, डोगरी, पंजाबी वगैरह। कुछ लोगों की भाषा 'खशाई' या खशाली' भी है।

लोगों में कमजोर अकीदे वालों की तादाद ज़्यादा है। वैसे खुदा-प्रस्त और सूफ़ी बज़ुर्गों की इज्जत करना इनका इमान है। सूफ़ीमत का इन पर अधिक प्रभाव है। टोने-टोटके और गंडे तावीज़ वाले हज़रात के वारे-न्यारे हो जाते हैं। साधु-महात्मा या फकीर यदि कोई दिखाई दे तो दिन-रात उसकी संगत में व्यतीत हो जाते हैं। हिंदुओं और मुसलमानों में अपने-अपने मज़हबों पर पुख्ता ईमान होते हुए भी लोक विश्वासों पर ज़्यादा भरोसा है। ज़्यारतों, खानकाहों और आस्तानों से संबंध बजुर्गों की प्रसन्नता, मुक्ति का मार्ग समझते हैं। यदि यह कहा जाये कि यहां के मुसलमानों पर ऐसे विश्वास हिंदुओं की तहजीव की बदौलत दृष्टिगत होते हैं तो बेमानी न होगा।

यहां तक मुसलमानों के रस्मो-रिवाज का संबंध है इन पर भी कहीं-कहीं कुछ विशेष रस्मों को छोड़ कर हिंदुओं की रस्मों का प्रभाव दिखाई देता है, परन्तु अधिक प्रभाव इस्लामी रस्मो-रिवाज के हैं। शादी, विवाह, दफन, कफन, निकाह, तलाक और ज़िंदगी से संबंधित विभिन्न समस्याएं एवं अन्य कारोबार दोनों सम्प्रदायों में अपने-अपने धर्म के अनुसार किये जाते हैं और कहीं-कहीं एक-दूसरे के साथ मिलते-जुलते हैं। हां, इन सब नियमों के पालन में सादगी और मितव्ययता (कम खर्च) का प्रकटावा होता है। कशमीर की भांति मामूली पकवानों पर हजारों रुपये खर्च नहीं किये जाते। जहालत के कारण और शिक्षा

१. अनवार फरीदिया, मतबूआ फरीदिया, बज़्म अदब डोडा, सफा—१२०

की कमी के कारण कुछ रस्में, बुरी तरह जड़ें पकड़ गई हैं। जैसे बेटियों की इच्छा जाने बगैर जिससे जी चाहे घर वाले शादी कर देते हैं। कई बार तो उमर का भी लिहाज नहीं रखा जाता। इसी प्रकार यदि कहीं पति-पत्नी में अनबन हो जाये तो पति को बल्कि लड़के के माता-पिता को भी कहीं-कहीं खास राशि देकर दूसरा व्यक्ति उस लड़की को पहले पति से तलाक दिलवा कर विवाह कर ले जाता है। यह सिलसिला अब केवल अशिक्षित वर्ग में ही चल रहा है और जहां लोक शिक्षित हो रहे हैं, यह प्रथा समाप्त हो रही है। इसी प्रकार एक और रस्म का भी अब अंत हो रहा है, जिसकी पाबंदी में विवाह करने वाले लड़के को लड़की के मायके में रह कर शादी से पहले एक खास समय तक घर का सब काम-काज अवश्य करना पड़ता था।

मुसलमानों में सम्पत्ति के बंटवारे का जो कुरानी नियम है उसके अनुसार लड़कियों में सम्पत्ति बांटने का रिवाज नहीं, अपितु वह इसके विपरीत करते हैं। कहीं कोई खाता-पीता घराना अपनी बेटी को दहेज वगैरह दे देता है परन्तु इस कुप्रथा में लोग बहुत कम फंसे हुए हैं। हिंदुओं में मुसलमानों की अपेक्षा दहेज का अधिक चलन है। गांवों में बेटी को भैंस, बकरी, गाय, मुर्गी आदि देते हैं।

मृत्यु चाहे हिन्दू की हो या मुसलमान की, दोनों पक्षों के लोग इस समय पर इकट्ठे मिल बैठते हैं। चौथी, पछवार और चालीसवां आदि रस्में मनाई जाती हैं। मृत आत्मा को शांति पहुँचाने हेतु हिंदू लोग दान-पुण्य आदि करते हैं और मुसलमान दान-पुण्य करने के अतिरिक्त खत्म-शरीफ़ वगैरह भी पढ़ाते हैं।

शादी संबंधी बहुत-सी रस्में दोनों सम्प्रदायों की मिलती-जुलती भी हैं और कुछेक भिन्न भी हैं। सेहरा दोनों सम्प्रदायों के लोग दूल्हा को बांधते थे, परन्तु अब मुसलमानों में यह रस्म कम होती जा रही है। दुल्हन को डोली में बिठाकर ले जाने की रस्म दोनों सम्प्रदायों में मौजूद है। हिन्दू लोग लड़की वालों के घर शादी वाले दिन खाना खाना अच्छा नहीं समझते, जबकि मुसलमान तो लड़की वालों के घर जाना ज़रूरी समझते हैं और अगर खाना खायें तो बुरा नहीं समझते। शादी में दुल्हन की मुंह दिखलाई की रस्म और दूल्हा को न्यौता देने का रिवाज आम है।

लगातार खुश्कसाली के दिनों में कभी यह रिवाज हुआ करता था कि बस्ती के लोग मिल-जुलकर कर किसी एक जगह खाना-पका कर पुण्य के तौर पर पर्यटकों को खिलाते थे परन्तु अब आधुनिक दौर में ऐसे कामों के वास्ते फुर्सत नहीं मिलती। हां देहातों में यह रस्म अब भी प्रचलित है। जिस प्रकार जन्म से मृत्यु तक विभिन्न रस्में प्रचलित हैं, इसी प्रकार रहन-सहन, खाना-पीना और पहनावे में भी दोनों सम्प्रदायों में समानता और भिन्नता विद्यमान

है। औरतों के लिबास में यहाँ हिंदुओं में साड़ी का रिवाज है. वहां मुसलमानों में कहीं-कहीं बुर्के का चलन रस्मी तौर पर रह गया है। इसी प्रकार हिंदुओं में अब घूंघट निकालने का रिवाज धीरे-धीरे उठ रहा है। बूढ़े मर्द पगड़ी, कुरता पायजामा पहनते हैं। जबकि नई नसल आधुनिक रिवाज़ की शौकीन है। पुरुषों में अब यहां कुरते-सलवार का रिवाज़ चल पड़ा है वहाँ महिलाओं में कश्मीरी फिरन का रिवाज उसी प्रकार ज़ोरों पर है जिस प्रकार उत्तरी भारत में इसका चलन हो रहा है।

यहां के कश्मीरी लोग जो कश्मीर से पलायन करके आए होंगे वह अपने साथ कश्मीरी तहज़ीब एवं वेश-भूषा का भी रंग भी लाए होंगे, परन्तु ऋतु परिवर्तन एवं अन्य भौगोलिक आवश्यकताओं ने स्थानीय रंग में परिवर्तित कर डाला। इसी कारण कश्मीरी फिरन का चलन धीरे-धीरे समाप्त हो रहा है गांवों में लोग पहनते हैं, परन्तु वह ऊनी कुरता कहलाएगा उसे फिरन नहीं कहा जा सकता। भाषा में भी परिवर्तन आ गया है। गहने बंधों और शृंगार का सामान और दूसरे इस्तेमाल की चीजों में परिवर्तन आ गया है और जम्मू-प्रांत की डोगरा तहज़ीब का प्रभाव नज़र आता है।

किसान लोग अपनी नई फसलों को तब तक नहीं खाते जब तक कि हिन्दू लोग अपने देवता के मंदि र में चढ़ा न लें और मुसलमान खत्म-शरीफ या दरूद-शरीफ न पढ़वाएं। कई बार मुसलमानों में से भी बहुत से लोग ज्यारतों और खानकाहों पर भेंट चढ़ाते हैं। इसी प्रकार बच्चा देने वाली गाय का दूध या घी पुराने ज़माना में नज़राना व मन्नत पूरी किये बिना प्रयोग में नहीं लाया जाता था, परन्तु अब घी तक पहुँचने की नौबत ही नहीं आती, क्योंकि गाय का दूध दूहने से पहले ही दूध लेने वाला बर्तन लिए खड़ा होता है।

सत्य यह है कि जब कोई रस्मो-रिवाज पर नज़र डालता है तो लगता है कि इनसान की सारी जिंदगी जन्म से मृत्यु तक रस्मो-रिवाज की जकड़ में इस प्रकार जकड़ी हुई है कि इन से एक क्षण भी मुक्ति पाना असंभव है और इन्सान जाने अनजाने तौर पर रस्मो-रिवाज का पालनहारा बन कर रह जाता है।

डोडा के लोग जब छोटी-सी बस्ती में बसते थे तो इनका पेशा कृषि और मजदूरी रहा होगा। परन्तु ज्यों-ज्यों हालात परिवर्तित हुए इन्सान भी इन से प्रभावित हुआ। इसने भी अपने आप को नए हालात के अनुसार ढालने का प्रयत्न किया। अतएव हम देखते हैं कि डोडा की यह बस्ती नई तालीम की रोशनी में नए इलम व हुनर से प्रभावित है। पुराने कृषकों ने अपनी ज़मीन बेच कर नए-नए कारोबार शुरू किये। आज़ादी से पहले जब यहां कुछ दुकानें और कुछ दफ़्तर थे, अब तो ज़िला का प्रधान नगर है। कार्यालयों की भरमार है और दुकानें भी अधिक मात्रा में हैं। सड़कें बनीं, बाज़ार बने, छोटे-बड़े

कारोबार खुले इसी कारण आज हर ओर चहल-पहल और गहमा-गहमी है। मैंने डोडा को सबसे पहली बार १९६४ ई० में देखा था। मुझे उस समय यह कस्बा अपने गांव से नया-नया-सा लगा परन्तु साथ ही बेकसी और बेकारी का अहसास भी हुआ। फिर जब मैंने कुछ वर्षों के पश्चात् देखा तो ऐसा लगा कि मौसम बहार में सफेदे के वृक्ष पर पत्ते उगने शुरू हो गए हों और आज ऐसा लगता है कि इस कस्बा पर धन की बारिश हो रही है। जिस ओर देखें नई तामीर का एक सिलसिला दिखाई देता है। लोग खुशपोश दिखते हैं, परन्तु यह सब होते हुए भी गरीबी की सतह अभी बहुत नीचे है। और गरीब मध्य वर्ग और नये दौलतमंद लोगों के बीच बहुत बड़ी दरार है, जिसे गरीब लोग शायद ही कभी पाट सकें।

कस्बा में शिक्षित लोगों की अच्छी खासी संख्या है। इस कारण बहुत से लोग नौकरी करते हैं। यहां के लोग एक छोटे से पद से लेकर उच्च पदों तक काम करते हुए मिलेंगे। यह सिलसिला राजनीति, वकालत, व्यापार, डाक्टरी, इन्जीनियरी और शिक्षा जैसे विभागों में भी जारी है। कृषक लोग बहुत कम रह गये गये हैं। जैसा कि किसी शायर ने कहा है—'गांव वाला शहर जाकर शहर ही का हो गया' इसके अनुसार हर देहात से आने वाला इन्सान चाहे वह नौकरी या व्यापार करने शहर आया हो। ज़मीन खरीदकर मकान बना लेता है, जिसके कारण ज़मीन का दायरा सिमटता जा रहा है और दिन-प्रतिदिन नए कारोबार खुल रहे हैं। लोग ठेकेदारी आदि पेशों को भी अपनाए हुए हैं अर्थात् यहां हर पेशे से संबंधित लोग मौजूद हैं।

एक समय वह भी था जब डोडा विभिन्न प्रकार की कलाओं का केन्द्र था। यहां "तीन सौ पश्मीना और कालीन बनाने की दुकानें थीं, जिन में नौ सौ कारीगर काम करते थे। पश्मीना समरकंद, यारकंद, ताशकंद और तुर्कीस्तान के दूसरे शहरों से आता था। उसे यहां की प्रवीण एवं कला मर्मज्ञ औरतें कातती थीं और बुनाई के पश्चात् इस माल को लांगी (भद्रवाह), बसोहली, शकरगढ़ के रास्ते अमृतसर की मंडियों में बेचने ले जाया करते थे। वहां इस की अधिक मांग थी। इस माल की मशहूरी महाराजा रणजीत सिंह संस्थापक लाहौर दरबार तक पहुँच चुकी थी। इस माल के प्रसिद्ध व्यापारी ख्वाजा मुहम्मद खलील किचलू और ख्वाजा मुहम्मद अब्दुल्ला मंटो के बजुर्ग थे[1]।

डोडा कसबा के निवासियों में दस्ती मजदूरी करने वाला कोई इक्का-दुक्का मिलेगा। वरना यहां मजदूरी का काम करने वाले बनिहाल के इलाकों से आए हुए या आस-पास के देहातों के मजदूर मिलेंगे। यहां तक की ईंटें बनाने वाले भी यहां भारत के विभिन्न इलाकों से आए हुए पुरुष और महिलाएं काफी संख्या में दिखती हैं। निर्माण के कामों में स्थानीय मिस्त्रियों के अतिरिक्त

१. अनवार फरीदिया मतबूआ फरीदिया, बज्मे अदब, डोडा। सफा—११८

अन्य भारतीय राज्यों से आए हुए भी मिलेंगे। यहां के स्थानीय मिस्त्रियों में टेक चंद नामक मिस्त्री ईश्वरीय पात्रता का मालिक है। यदि यह अनपढ़ न होता तो अवश्य वह निर्माण विभाग में किसी उच्च पद पर काम कर रहा होता। इसने अपने शिष्य मिस्त्रियों का एक अच्छा-खासा टोला तैयार कर लिया है। जो अधिकतर निर्माण कार्यों पर अपना प्रभुत्व जमाए बैठा है।

यहां तक डोडा के निवासियों की आर्थिक स्थिति का सम्बन्ध है। इस कस्बा के लोग यदि ज़्यादा अमीर नहीं हैं तो वह ज़्यादा गरीब भी नहीं हैं। प्रायः हर घर और हर खानदान का कोई न कोई व्यक्ति किसी न किसी कारोबार या नौकरी पर लगा हुआ है और अपने-अपने घर की जिम्मेदारियां निभा रहा है। इस लिहाज से यह बात पूरे विश्वास से कही जा सकती है कि डोडा के कस्बे के लोग अच्छी खाती-पीती ज़िंदगी गुज़ार रहे हैं। देहातों में तो बीसों उदाहरण मिलेंगे कि जिनके पास पेट भरने और तन ढांपने के लिए कुछ भी नहीं है। अर्थ व्यवस्था का एक सिद्धांत है कि इन्सान के पास जो चीज़ जितनी ज़्यादा होती है वह और ज़्यादा की इच्छा करता है। एक हदीस बात है कि यदि इन्सान के पास दो जंगल भरे हुए दौलत के हों तो वह तीसरे ऐसे ही जंगल की कामना करेगा। यदि हम इस कसौटी पर डोडा को परखें तो उसका अस्तित्व कहीं नहीं दिखाई देगा, परन्तु ऐसा कदापि नहीं है यहां के लोगों की आर्थिक दशा संतोषजनक है।

यहां तक आमदनी के साधन का सम्बन्ध है वह भी नौकरी और कारोबार पर निर्भर है। कृषक सब्जियां और अन्न उगाते हैं। गायें पालने वाले दूध बेचते हैं, मालिक मकान किरायादारों से किराया लेते हैं। सरकारी कर्मचारी वेतन पाते हैं और व्यापारी लोगों का तो ज़ाहिर ही है कि रुपये-पैसे में खेलना होता है। वैसे इस कस्बा में हर उस पेशे से सम्बन्धित लोग आबाद हैं जिनका समाज में होना हर हालत में ज़रूरी समझा जाता है। चाहे उसका सम्बन्ध उच्च या निम्न श्रेणी से क्यों न हो। इस प्रकार इन सब की आर्थिक दशा की नींव भी उन ही विभागों पर तामीर की गई है। इस लिहाज से यहां के लोगों की आर्थिक स्थिति और रहन सहन संतोषजनक है।

यहां तक लोक-साहित्य का सम्बन्ध है इस का यदि ब्योरा दिया जाये तो समाज और इसमें सांस लेने वाले प्राणी की संस्कृति और उसके रहन-सहन और इससे सम्बन्धित रस्मो-रिवाज, विश्वास तथा मान्यताएं, अन्ध-विश्वास और अन्य मूल्यों और पैमानें की बुनियादों में लोक-साहित्य ने ईंट-गारे का काम किया है। और इसका हमारी ज़िंदगी की बनावट में एक महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है। किसी भाषा का लोक-साहित्य वहां के इन्सानी समाज और साहित्य एवं संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है। लोक-साहित्य इन्सानी ज़िंदगी पर इस प्रकार छाया है कि अब इसे भी लोक-विज्ञान का नाम दिया गया है।

डोडा कस्बा के लोगों में अब अधिक संख्या कश्मीरी भाषा बोलने वालों की है, इसलिये यहां के लोगों में भी कश्मीरी लोक-साहित्य का अधिक चलन है जो कि इस प्रकार है—

१.	वन वुन	शादी विवाह के अवसर पर महिलाओं द्वारा गाए जाने वाले गीत।
२.	मंज़ल बाअथ	पालने के गीत।
३.	रौव या रोफ	धार्मिक उत्सवों पर महिलाओं द्वारा गाए जाने वाले गीत।
४.	वत्चुन	गज़ल की इब्तदाई शक्ल।
५.	वँगीवचुन	विवाह मंडप या रंगोली के गीत।
६.	छकर	छकरी।
७.	बाअथ	बच्चों के गीत।
८.	वान या वँदाख	नोहा।
९.	गिंद बाछी	हंसी-मजाक के गीत।
१०.	नीरी बाअथ	चरवाहों के गीत।
११.	निद बाअथ	नलाई के गीत।
१२.	लेडी शा	धार्मिक, राजनीतिज्ञ एवं ऐतिहासिक गीत।
१३.	लुक ऐतकाद	लोक-विश्वास।
१४.	प्रँच्छ	पहेलियां।
१५.	लुक कथ	लोक कथाएं।

इनके अतिरिक्त मुहावरे, कहावतें आदि भी लगभग इसी कोटि में आते हैं।

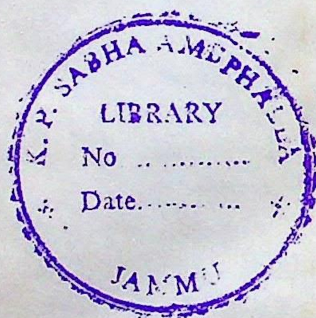
डोडा में भद्रवाही और सिराजी बोलने वाले लोग भी काफी आबाद हैं। वे कश्मीरी भाषा से भी परिचित हैं। तो भी इन का अपनी भाषा में भी अधिक मात्रा में लोक-साहित्य है। इनमें भी लोक नाच, लोक गीत, लोक कथाएं, लोक विश्वास, मुहावरे, कहावतें, पहेलियां और हंसी-मजाक जैसी किसमें मौजूद हैं। घोरी, घुरेई, घाती-सगली और एंजली यहां के लोक-साहित्य का एक अद्भुत भाग हैं और इस सम्पत्ति से इन भाषाओं का आँचल मालामाल है।

यहां मुसलमानों के घरानों में शादी-विवाह और अन्य खुशी के अवसरों पर जो गीत गाए जाते हैं वह कश्मीरी लोक-साहित्य का भाग भी हैं और इसके अतिरिक्त इन में स्थानीय रंग भी मिलता है। हिंदुओं के हां भी स्थानीय रंग के होते हुए डुग्गर देश के लोक-गीतों की गूंज सुनाई देती है। लोक-कथाएं,

लोक-विश्वास, पहेलियां, नलाई के गीत वगैरह हिंदुओं और मुसलमानों में कुछ स्थानों और सूरतों में मिलते-जुलते और एक जैसे भी हैं, परन्तु ज्यों-ज्यों नए सांस्कृतिक मूल्यों का रिवाज और चलन बढ़ता जा रहा है इस किसम के लोक-साहित्य पर पर्दे पड़ते जा रहे हैं। ज़मीनें सिमट गईं तो नलाई के गीत समाप्त हो गए। लोक-नाच समाप्त हो गया तो रॉक एंड रोल और डिस्को नाच ने अपने कदम जमा लिए। विवाह-शादियों में या तो फिल्मी गीत गाए जाते हैं या कैसेट्स का प्रयोग किया जाता है। लोक-कथाओं और कहानियों का स्थान वीडियो और टैलिविजन की फिल्मों ने ले लिया। हां आस-पास के देहातों में अभी तक लोक-साहित्य का चलन बाकी है। परन्तु खास कस्बा के लोगों में यह अब केवल रस्म के तौर पर ही जीवित है। अतएव इस बात की अति आवश्यकता है कि इस अनमोल पूंजी को सुरक्षित रखने की कोशिशें की जायें। □

अनुवाद—ज्ञानसिंह







HAMARA SAHITYA—1986 Price : Rs 23/-

Published by the Secretary on behalf of J & K Academy of Art, Culture & Languages, JAMMU & Printed at Rohini Printers Kot Kishan Chand, JALANDHAR (Pb.)